न तिष्ठति तु यः पूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमाम् ।

ॐ

ब्रह्म-बोधिनी



सन्ध्या

सत्यप्रकाश

वेदाहमेतम् पुरुषम् महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।

तमेव विदित्वाऽति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यते ऽयनाय ॥

स शूद्रवत् बहिष्कार्यः सर्वस्माद् द्विजकर्मणः ॥

ओ३म्

ब्रह्म बोधिनी

सन्ध्या

ईश्वर, जीव, प्रकृति और शब्दार्थ, भावार्थ
एवं व्याख्या आदि तथा हवन मन्त्रसहित
सत्यप्रकाश संन्यासी सन्ध्योपदेशक
ने
वर्षों के ध्यान, आत्माभ्यास और अनुभव के पश्चात,
वेदादि अनेक शास्त्रों की सहायता से लगभग
३२५ प्रमाण युक्त रचकर
अनेकानेक विद्वान् अनुभवी संन्यासी महात्माओं और गृहस्थ
वनस्थ, अधिकारी महानुभावों से, प्रथम संस्करण में पूर्व एवं
पश्चात्, पर्यालोचित तथा अनुमोदित कराके, स्थान एवं
आकाशानुगत परिवर्धन और संशोधन आदि करके

के० सी० भल्ला के प्रबन्ध से स्टार प्रेस, प्रयाग में छपा

द्वितीयवार ५०००] १९७४ वि० मूल्य { ।) प्रति, १०० तक
≡) प्रति, ४०० तक
=)॥ प्रति, इस से ऊपर

॥ ओ३म् ॥

विषयानुक्रमणिका

विषयानुक्रमणिका

ओ३म

भूमिका

१—विना अर्थ की सन्ध्याओं को सज्जन ! पद मिश्री मानो :
विन पदार्थ मुख मे चाखे तुम स्वाद न मिश्री का जानो ॥
२—अमृत अमृत जपकर जग में अमर न कोई होता है ।
अमृत-साधन-जीवनान्त जन, सर्प मणी तज, रोता है ॥
३—दैहिक और मानसिक बन्धन को मित्रो ! धिक्कार करो ।
धर्म अर्थ और काम मोक्ष से सपने हूँ जो प्यार करो ॥
४—ध्यान समय विषयों को तजकर अपना तुम उपकार करो ।
मन से शब्द बुद्धि से अर्थ यह सदाचार स्वीकार करो ॥

पाठकवर्ग !

उपासना मनुष्य की प्राकृत आवश्यकता है जिस प्रकार पेट को भोजन की आवश्यकता है । उसी प्रकार जीवात्मा को उपासना रूप धर्म की आवश्यकता है । जैसे विना भोजन के शरीर स्थिर एवं स्वस्थ नहीं रह सकता, ऐसेही विना उपासना किये जीवात्मा स्थिर एवं स्वस्थ नहीं रह सकता । जिसप्रकार स्वच्छ एवं उत्तम भोजन से शरीर उत्तरोत्तर उन्नति करता है, उसी प्रकार स्वच्छ एवं निर्मल मन से उपासना करनेवाला जीवात्मा भी

उत्तरोत्तर पूर्ण एवं उच्च होता जाता है। भाव यह कि विना उपासना के जीव की सद्गति असंभव है।

प्रश्न — उपासना अथवा सन्ध्या क्यों करनी चाहिये ?

उत्तर—(१) अन्तःकरणों की शुद्धि, आत्मिक बल, तथा परमात्मज्ञान के लिये सन्ध्या का अनुष्ठान अत्यावश्यक है। जिस प्रकार जलादि के विना शरीरादि की बाह्य शुद्धि, अथवा पवित्रता नहीं हो सकती; उसी प्रकार वेदादि सत्य शास्त्रों का अध्ययन एवं उपासनारूप तपश्चर्य्या करते हुए, प्रकाशस्वरूप परमात्मा का चिन्तन प्रतिहार पूर्वक (धारणा ध्यान, तथा समाधि द्वारा) किये विना अन्तःकरण (मन, चित, बुद्धि एवं अहंकार) तथा आत्मा की शुद्धि एवं पवित्रता हो नहीं सकती। अतएव अन्तःकरण को सत्त्वप्रधान अर्थात् सतोगुणी बना एवं मन में सत्य, चित्त में स्थिरता, अहंकार में नम्रता, तथा बुद्धि में ज्ञान की प्रधानता द्वारा आत्मा को उत्तम गुण-कर्म-स्वभाव युक्त करके सर्वथा शुद्ध, निर्मल, एवं पवित्र बनाना सन्ध्या का मुख्य प्रयोजन है। अन्यथा केवल शरीर मात्र की उन्नति करने वाला ईश्वर-स्तुति प्रार्थनोपासना-शून्य मनुष्य आत्मघाती कहाता है।

(२) मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजी का नियमपूर्वक दोनों समय सन्ध्योपासन करना रामायण से सिद्ध है। इससे

भी यही निश्चय होता है कि सन्ध्योपासन मनुष्य के लिये एक आवश्यक कर्त्तव्य है। लिखा है कि:—

"कौसल्या-सुप्रजा राम पूर्वा सन्ध्या प्रवर्त्तते।
उत्तिष्ठ नरशार्दूल कर्त्तव्यं दैवमान्हिकम् ॥
तस्यर्षेः परमोदारं वचः श्रुत्वा नरोत्तमौ।
स्नात्वा कृतोदकौ वीरौ जेपतुः परमं जहम् ॥

(वाल्मीकीय रामायण बालकाण्ड सर्ग २३)

अर्थात् प्रातः काल होने पर ऋषिवर विश्वामित्र ने दोनों भाइयों को जगाया और कहा कि हे नरोत्तम! प्रातः काल की सन्ध्या का समय हो गया, उठिये और नित्य कर्म से निवृत्त हू जिये। यह सुन रामचन्द्र एवं लक्ष्मण दोनों भाइयों ने उठ कर स्नान आचमनादि करके सन्ध्या नित्य कर्म किया।

प्रश्नः—सन्ध्या करने से क्या लाभ है? क्योंकि प्रत्येक मनुष्य किसी भी कार्य में तब प्रवृत्त होता है जब कि उसे उस कार्य में कुछ लाभ प्रतीत होता हो, इस लिये सन्ध्या से जो लाभ होते हैं उनका वर्णन करना आवश्यक है।

उत्तर–सुनिये (१) चित्त की स्थिरता। चित्त के एक दशा में स्थिर न रहने से मनुष्य का कोई भी कार्य सफल नहीं हो सकता। क्योंकि प्रत्येक कार्य में चित्त वृत्तियाँ अपने प्रभाव से

अवरोध या विघात अथवा विघ्न करती रहती हैं। इसलिये आवश्यक है कि चित्तवृत्तियों के वशीकरणार्थ सन्ध्योपासन का अनुष्ठान किया जाया करे।

(२) मन का विषयासक्ति से हटकर आत्मिक प्रभाव से प्रभावित होना, क्यों कि यह आत्मोन्नति तो दूर प्रत्युत शरीरोन्नति के लिये भी विघातक सामग्री को ही एकत्रित करने में लगा रहता है।

(३) अहङ्कार का सात्विक होकर मानवोन्नति का साधक होना, क्योंकि यह भी कभी कभी मिथ्या उन्नति में पड़कर जीवात्मा को ब्रह्म तक बना देने का प्रबन्ध कर देता है।

(४) शुभाशुभ विचारने वाले करण अर्थात् बुद्धि एवं विवेक का ध्यान द्वारा सूक्ष्म तत्त्वों के चिन्तन में सूक्ष्मदर्शि सूक्ष्म चिन्तक बनाना। क्योंकि जैसे व्यायाम से शरीर बल और प्राणायाम से प्राणबल तथा साहस आदि की उन्नति एवं वृद्धि होती है, उसी प्रकार ध्यान आदि से विचार एवं विवेकबल बढ़कर बुद्धि सूक्ष्म से भी सूक्ष्म पदार्थ को शीघ्र अवगत करने के योग्य बन जाती है। वस्तुतः बुद्धि ही एक ऐसा सूक्ष्मतम साधन है कि जिसके तीव्र और सूक्ष्मदर्शक होने से हम संसार के सम्पूर्ण अवयवों तथा मनुष्य,

पत्नी आदि की वास्तविक अवस्था को पहचान सकते हैं,

इस निखिल प्रपंच के कारण अर्थात् प्रकृति को जान सके हैं। उस समय मनुष्यमात्र प्राकृत परमाणुओं के वास्तविक स्वरूप का प्रत्यक्षतया निश्चय करके, मोह को त्याग, एवं प्राकृत भोगों से अपने आपको पृथक् कर, ध्यान-समाधि द्वारा आत्मिक ज्ञान को प्राप्त कर लेता है जो कि उसका तात्त्विक स्वरूप है। तदनन्तर परमात्मचिन्तन द्वारा परमात्मस्वरूप को साक्षात् करके अज्ञान-बन्धन से स्वतन्त्र हो, सन्देह मात्र से छूट, अविद्या आदि पाँच क्लेशों से मुक्त होकर और कर्मफल रूप बन्धनों को तोड़, परमानन्द रूप मोक्ष का अनुभव करता है।

यह एक निश्चित सिद्धान्त है कि विना सूक्ष्म बुद्धि के निराकार परमात्मा का ध्यान नहीं हो सकता, और विना परमात्मा को जाने अभ्युदय रूप संसार-सुख, एवं मोक्षरूप आत्मिक सुख के देनेवाले धर्म के अंगों की यथावत् धारणा हो नहीं सकती। क्योंकि ध्यानबल से ही शास्त्रीय गूढ़ातिगूढ़ तत्त्वों का ज्ञान सम्भव है। ध्यानशून्य होने ही से तो वेद महत्त्वानभिज्ञ पूर्व पण्डितों, एवं सायण, महीधर आदि उत्तर भारतीय, तथा विलसन ग्रिफिथ आदि यूरोपीय पण्डितों ने यथार्थ वेदार्थ की प्राप्ति न करके प्रायः मनोनीत वेदार्थ करते हुये, वेदों में इतिहास, भौतिक

उपासना, अश्लील वा असभ्य कथाएं और कहानियां तथा ब्राह्मणों की मन मानी रचना आदि आदि अगणित सर्वथा वेद-अयुक्त एवं मूर्खता की बातें बताकर वेदों को अति घृणित वा गड़रियों के गीत, और वेदाभिमानी जगत् गुरू ऋषि सन्तानों को अतत्ववेत्ता, असभ्य वा जङ्गली सिद्ध करते हुये, वेदों के तात्त्विक महत्व को मिट्टी में मिला, भूमण्डल को समान्यतया और भारतवर्ष को विशेषतया वेदों के वास्तविक शारीरिक, मानसिक और आत्मिक सुख देने वाले यथार्थ सत्य तत्वज्ञान से वञ्चित कर के उलटा नास्तिक (वेदनिन्दक) वेद विरुद्ध अपितु वाममार्गोचित पद्धतियों का कर्त्ता स्वार्थ-चिन्ता आदि से नाना सम्प्रदायों का रचयिता एवं असंख्य अधर्म आदि क्रियाओं से देश, जाति तथा सद्धर्म को रसातल में पहुँचाने वाला आदि बनाने का दुष्प्रबन्ध कर दिया। इसलिये आवश्यक है कि धारणा-ध्यान-समाधि-पूर्वक वेदार्थ का चिन्तन किया जावे, जिससे कि सत्यार्थ की प्राप्ति होकर परमानन्द का लाभ हो।

ब्रह्म बोधिनी संध्या की सार्थकता

ब्रह्म नाम प्रकृति वा परमाणुओं का भी है।

यह सन्ध्या-पुस्तक प्रकृति विषय में भी अघमर्षण के तीन मन्त्रों द्वारा ऐसा पूर्ण-प्रकाशित एवं सर्वथा भ्रम निवारक शाब्दिक चित्र उपस्थित करती है कि जो वेदों तथा उनके परम सेवक और सच्चे अनुसारी उपनिषद्, दर्शन आदि सत्य एवं आर्ष शास्त्रों में भूगोलवत् यत्र तत्र स्पष्ट वा संकेत रूप से वर्णित रचना, संहार आदि को युक्ति और प्रमाण बल से सर्व संदेहों के देह रूपी आवागमन से सर्वथा मुक्त करके ऐसा प्रत्यक्ष निश्चय कराती है कि जिससे ज्ञान-बल प्राप्त आत्मा (सिंह शृगालवत्) सर्वभाक्षी भ्रमदल अपने एवं औरों के दूर कर देने को समर्थ हो जाता है। और फिर मायावी माया वादियों की अकर्मण्यता तथा अधार्मिकता संस्थापक वा नाना दुःखदायी, पापवर्धक तथा अनाचार उत्पादक एवं देश, अपितु भूमण्डल नाशक सर्वथा नास्तिक शिक्षा वा स्वार्थ साधक माया को उसके कारण अविद्या वा अवैदिकता तथा भ्रम को समूल नष्ट कर सकता है।

यहाँ सन्देहातीत सिद्ध कर दिया गया है कि प्रकृति, पर-माणु।पुञ्ज, कारण, प्रधान, स्वधा, आदि नाम एक ही माया के

हैं जो (जीवों की भांति सदा ब्रह्म से भिन्न वा अन्य प्रत्युत सर्वथा असदृश ब्रह्म से व्याप्त) तम, रज और सत् (गुण रूप से प्रसिद्ध) तीन नाम वाले भिन्न भिन्न परमाणुओं का सामूहिक नाम है।

जब सब परमाणु एक एक वा पृथक् पृथक् सम अथवा स्वस्वरूप को प्राप्त हो जाते हैं वा अपने रूप में आजाते हैं तब उनको प्रकृति आदि नामों से प्रकट करते हैं। और जब सर्वाधार सर्वेश्वर परमाणुओं को मिलाकर अनेकों रूपोंऔर आकारों में प्रकट वा उत्पन्न करता है तब वे जगत् नाम से पुकारे जाते हैं। वस्तुतः भेद मिलने वा पृथक् होने का है अन्यथा परमाणुओं में कोई भेद नहीं हो जाता क्योंकि परमाणु निरवयव वा निराकार हैं अर्थात् कदापि बनी हुई वस्तु नहीं, कुतः परमाणु (परम अणु) वा अत्यन्त सूक्ष्म वही वस्तु कही जा सकती है जिसके टुकड़े न हो सकें। खण्ड जन्य पदार्थ के टुकड़े हो जाना निर्विवाद सिद्ध है।

सत् असत् से विलक्षण अनिर्वचनीय शब्द की भाजनी वा सर्वथा जर्जरी भूत (सर्वतः सर्वथा खण्डित) ढाल (डूबते को तिनके के भ्रम सम) से माया की रक्षा परमाणुवाद के अध धातु रूप प्रत्यक्ष आदि अष्ट प्रमाणों से पुष्ट, पदार्थ विद्या, भूगोल, खगोल, वैद्यक आदि विद्या अनुमत, वेद, मनु, उपनिषद् दर्शन एवं सर्वसत् शास्त्रानुकूल होने से सर्वथा सुरक्षित

खड्ग के समक्ष उसी प्रकार नहीं ठहर सकती जैसे कि नितान्त अधर्मी ईश्वर के समक्ष सन्ध्या कर्म में।

इस लिये धार्मिक पुरुषों को उचित है कि कुतर्क वा कोरे विवाद को (जो माया मिथ्या वा अन्यथा वाद के बल से किया जाता है) सर्वथा तजकर सत्य केलिये निर्णय करें अथवा अपने हृदय में विचारें। और आलस्य, प्रमाद, वाचिक (कोरा) ज्ञान परन्तु वास्तविक अज्ञान एवं अन्धतम से स्वयं छूटकर अन्यों को छुड़ा, सच्चे वैदिक एवं ईश्वर भक्त बनें।

ब्रह्म नाम वेद का भी है।

वेदों में वीर्य रक्षा, विद्याध्ययन, सब प्रकार शरीर, अन्तःकरणों, आत्मा और तत्सम्बन्धी पदार्थों की उन्नति, वृद्धि, प्राप्ति और रक्षा करने, दुराचरणों के त्याग और सुष्टु पवित्राचरणों के ग्रहण की शिक्षा दी गई है।

इसलिये जो कोई वीर्य रक्षा, वेदाध्ययन तथा वैदिक आचरण करता है उसको ब्रह्मचारी और उसके आचरण को सदाचार कहते हैं; और वेद विरुद्ध ग्रन्थों के पढ़ने, कुसमय वीर्य नष्ट करने एवं बाल, वृद्ध विवाहों आदि से शारीरिक मानसिक, आत्मिक और सामाजिक अवनति (हानि वा

आवट) करने को दुराचार वा व्यभिचार मानते हैं

यह सन्ध्या की पुस्तक प्रकृति, जीव तथा ईश्वर स्वरूप को शब्दों में समझा वा बता कर सर्व भूलोक के लिये, समान रूप से एक मात्र चतुर्वेदी सन्ध्या प्रस्तुत करती हुई, अपनी उपयोग्यता अति उदार भाव से दर्शाती हुई स्पष्टतया सिद्ध करती है कि "वेदाहमेतम्पुरुषं महान्तमादित्यवर्णम् ....." इस वेद शिक्षा के अनुसार एक मात्र और एक ही प्रकार से परमपिता परमेश्वर सब का उपास्य देव है।

और द्विजमात्र (ब्राह्मण, क्षत्री और वैश्य) को धर्म (विहितपथ) पर चलने के लिये अपनी बुद्धि वा कर्मों को सुधारने (दुष्ट मनोनीत मार्ग से हटाने एवं वरम् पथ पर लाने) एवं क्रमशः मनुष्य मात्र को शारीरिक और मानसिक दासता से छुड़ा सांसारिक स्वतन्त्रता (मुक्ति) द्वारा दैहिक तथा मानसिक सुख भोगने, और पारमार्थिक स्वतन्त्रता वा मुक्ति द्वारा आत्मिक आनन्द का अनुभव करने का केवल एक और एकही विधि का ब्रह्मोपासना रूप साधन है कोई अन्य नहीं है।

चारों वेद एक मात्र पूर्ण निर्भ्रान्त अनन्त ज्ञानी ईश्वर प्रदत्त होने से सर्वथा अविरुद्ध प्रत्युत एक दूसरे के अङ्ग होने से ऋग्वेदी, यजुर्वेदी आदि नाम से द्विजों में वेद-भेद मानना, नितान्त अयुक्त और भ्रम मूलक होने से सन्ध्यांश

में तो सर्वथा ही त्याज्य वा अग्राह्य है क्योंकि ऋग्वेद विशेषतः ज्ञानकाण्डी, यजुर्वेद कर्मकाण्डी, साम उपासना-काण्डी और अथर्व तीनों का परिशिष्ट, विद्या आदि का पूर्त्ति और रक्षा आदि तथा शेष भ्रम निवृत्ति के लिये है।

अतएव कोई भी एक वेदी पूर्णतया कर्म वा उपासना नहीं कर सकता।

दूसरे जब तीनों वर्णों को वेद शास्त्र से वेदाध्ययन का अधिकार है तो क्षत्री, वैश्यों को यमुना, गङ्गादि कल्पित गायत्री मन्त्रों द्वारा वञ्चित करना महापाप और नास्तिकता है।

ऐसेही एक मात्र मुख्य गायत्री वा गुरु मन्त्र के स्थान में अन्य वा भिन्न भिन्न वेद मन्त्र क्षत्री, वैश्यों को बताना भी कार्पण्यरूप वेदाघात है, कुतः गायत्री (स्त्री लिङ्ग शब्द) एक छन्द वा वेद मन्त्र का नाम है जिसका देवता एकही ब्रह्म सर्वव्यापक है। कोई एक देशी पदार्थ वा स्त्री अथवा पुरुष नहीं है जो २४ मुद्रा करने वा योनि-प्रदर्शन पर मोहित वा आसक्त होकर क्षत्री आदि को छोड़ कर, सब द्विजोत्तम वा ब्राह्मण नाम धारियों के सम्मिलित भाग में आजावे, अस्तु।

इस पुस्तक में "यथा पूर्वमकल्पयत्" इस ऋग्वेद वाक्य की व्याख्या द्वारा जहां यह बताया एवं सिद्ध किया गया है कि ईश्वर नित्यकर्त्ता, धर्त्ता और संहर्त्ता है। जीव नित्य मुक्ति वा बन्धन में रहते हैं और प्रकृति वा परमाणु सदा

कारण और कार्य रूपी परिणाम शील हैं। वहाँ शब्द, अनुमान एवं अर्थापत्ति आदि प्रमाणों से सिद्ध किया है कि कोई पदार्थ अभाव से भाव, वा भाव से अभाव रूप नहीं होता: परमेश्वर कभी कोई अपूर्व (पहली वा आदि सृष्टि में न हुये) पदार्थ को किसी अगली सृष्टि वा मध्य सृष्टि में न रचता है और न रचे हुए किसी पदार्थ वा जगत् को कभी सदा के लिये नष्ट करके जागृतिहीन निद्रा में सदा के लिये सोवेगा।

जिस भांति जगत् वा ब्रह्मदिन रात परवाह से अनादि हैं। ऐसेही मुक्ति बन्धन, विवेकाविवेक आदि परवाह से अनादि हैं। और जिस ईश्वर ने जगत् के सब जड़ पदार्थ रचे हैं उसीने उनके लिये कर्म, ज्ञान और उपासना काण्ड रूपी वेद (ज्ञान) आदि सृष्टि में देकर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों पदार्थों की प्राप्ति के लिये गुण-कर्म-स्वभावानुसार चार वर्णों एवं चार आश्रमों में विभक्त हो जाने एवं रहने की शिक्षा भी दी है।

ऐसे ईश्वर-उपदेश द्वारा वैदिक सिद्धान्तों और सनातन धार्मिक शिक्षाओं की प्रतिष्ठा, पुनरुद्धार वा स्थापना करते हुए, अवैदिक संकुचित विचारों, मिथ्या मत मतान्तरों, कल्पित स्वार्थमात्र साधक, देश धर्म एवं जगन्नाशक सर्वात्याचारों और स्वभाव मात्र वा केवल जन्माधिष्ठित वर्ण व्यवस्था [वृक्ष और पशु के काले पीले आदि वर्ण (रङ्ग) वा जाति (आकृति) के समान] कल्पित

अपरिवर्त्तनीया, मिथ्या और शुष्क वर्ण व्यवस्था का वेदादि शब्द एवं प्रत्यक्षादि प्रमाणों तथा युक्तियों वा अभ्यास से सर्वथा उन्मूलन (समूल खण्डन) कर के, वेदानुकूल गुण-कर्म-स्वभाव (कर्म-जन्य-संस्कार) के समुच्चय से सिद्ध करते हुये स्पष्टतया घोषित किया गया है कि भूमण्डल के प्रत्येक देश का प्रत्येक मनुष्य (स्त्री एवं पुरुष) वर्त्तमान् (इसी जन्म में भी) गुण कर्म स्वभाव परिवर्त्तनानुसार वर्ण बदल लेने का अधिकारी है, क्योंकि 'ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्. बाहू राजन्यः कृतः। उरू तदस्य यद्वैश्य पद्भ्यां शूद्रो अजायत। ऋ० १० । ६० । १२

इस वेद मन्त्र में अस्य नाम इस जगत् के सर्व मनुष्य अर्थात् स्त्री, पुरुष चार भागों में इस प्रकार निज गुण-कर्म-स्वभाव के अनुसार विभक्त किये जाने बताये हैं कि जो ब्रह्म नाम वेद एवं ईश्वर को यथार्थ जानने वाला काम क्रोध आदि हीन वा वशो ज्ञानेन्द्रिय-युक्त शिर के समान पूर्ण ज्ञानी हो कर संसार को सब शुभ मार्ग दिखा एवं चारों वर्णों को उनको विद्या सिखा सके वह ब्राह्मण: पूर्ण ब्रह्मचारी विद्या, साहस, पराक्रम, निर्भयता, आदि युक्त राज-नीति-निपुण, देश, धर्म और जाति तथा सब संसार की भुजाओं के तुल्य रक्षा करने वाला क्षत्री: एवं विद्वान्, धर्मात्मा, पुष्टाङ्ग, क्रय विक्रय-कर्त्ता, कृषि, पशु-पालन

आदि में तत्पर, कला यन्त्र आदि व्यवहार-कुशल, शिल्प और वाणिज्य-अभ्यासी, सब प्रकार से ऐश्वर्य की प्राप्ति, वृद्धि और रक्षा करके चारों वर्णों को धनादि का समर्पण करने वाला वैश्य; और वेद विद्या हीन अर्थात् पढ़ाने आदि से न समझ सकने वाला यत्किञ्चित् भाषा का ज्ञाता, हृष्ट-पुष्ट-शरीर भारवाह, सेवा में दक्ष पाँव की भांति सहन शील शूद्र है।

आगे मनु भगवान् कहते हैं "ब्राह्मणो शूद्रतामेति शूद्रो याति ब्राह्मणताम्। क्षत्रयः यान्ति एवन्तु विद्याद्वैश्या तथैवच॥ अर्थात् ब्राह्मण अपने कर्म छोड़ने से शूद्र हो सकता है, शूद्र ब्राह्मण के कर्म करने से ब्राह्मण। क्षत्री वैश्य, वैश्य क्षत्री, और प्रत्येक वर्ण अपने से ऊँचे वा नीचे तीनों वर्णों को क्रम से वा एक साथ अर्थात् एक समय में केवल एक को प्राप्त हो सकता है। आगे परिवर्त्तन का कारण भी बताते हैं "योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम्। स-जीवन्नेव शूद्रत्त्वमाशु गच्छति सान्वयः" ॥ २ । १६८ ॥

अर्थात् जो ब्राह्मण, क्षत्री वा वैश्य वेद नहीं पढ़ता, और कुछ पढ़ता रहता वा केवल कोई धनदा करता रहता है; वह इसी जन्म वा देह में कुनवे सहित मूर्ख एवं शूद्र हो जाता है। जैसा कि वर्त्तमान काल में प्रत्यक्षतया हो रहा है। ब्राह्मण वेद पढ़ना, पढ़ाना, यज्ञ करना कराना

आदि त्याग कर सब प्रकार सेवा करते हुये शूद्र बन जाने पर भी ब्राह्मण पने के मिथ्या मद में चूर हो रहे हैं एसे ही क्षत्री और कितने वैश्य नीचे गिर गये हैं और उनके विरुद्ध शूद्रादि पढ़ कर एवं उत्तम कर्म करके उच्च बन गये और बन रहे हैं; और बनना भी चाहिये था किञ्च वेद शास्त्रों की आज्ञा है और ईश्वर न्यायकारी है जो कर्मानुसार योनियां तक बदल देता है अर्थात् मनुष्य से पशु और पशु से फिर मनुष्य, बद्ध से मुक्त और मुक्त से बद्ध, स्त्री से पुरुष वा पुरुष से स्त्री (अन्य जन्म में) कर देता है। तो अन्य वर्ण से अन्य वर्ण इसी जन्म में हो जाना कोई आश्चर्य नहीं।

ब्राह्मण क्षत्री आदि हिन्दू, ईसाई और मुसलमान आदि होते रहते हैं, जन्म से वर्ण होता तो क्यों होते ?

धर्म सभाओं एवं राज सभाओं के वैदिक न होने, फलतः वर्ण व्यवस्था का ठीक २ व्यवहार न करने से आज काल मनुष्य प्रायः अवर्ण है।

सब वर्ण सर्व वर्णों का कार्य करके प्रायः शूद्र वा वैश्य बन रहे हैं।

ब्राह्मण और क्षत्रियों का अभाव सा हो गया है। यह हा सब से बड़ा सर्व जगत् का सामान्यतया और इस भूमण्डल का विशेषतया सच्चा शारीरिक, सामाजिक और आत्मिक सुख

दायी वैदिक धर्म और उसके मुख्य रक्षक भारत देश और आर्य्यजाति के अधः पतन का दुःखदायी कारण है। अतः सर्व भूमण्डल के राजा प्रजाओं को सामान्यतया और भारतदेशीय राजा प्रजाओं को विशेषतया इस वर्ण व्यवस्था के सुधार तथा शुद्ध और सत्य व्यवहार पर विशेष ध्यान देना चाहिये।

आश्रमों के सम्बन्ध में भी वेदों में शिक्षा दी गई है।

वर्णों की भांति आश्रम भी चार हैं:—प्रथम ब्रह्मचर्याश्रम है, इसमें न्यून से न्यून २५ एवं १६ वर्ष तक बालक बालिकायें गुरुकुल में रह कर वेद आदि सत् शास्त्रों को, ईश्वर उपासना पूर्वक, पढ़ने से यथार्थ ज्ञान प्राप्त कर मानसिक बल और वीर्य रक्षा आदि से शारीरिक बल युक्त हों।

द्वितीय गृहस्थाश्रम है। इसमें रहते हुये शास्त्रोक्त विधि से सन्तानोत्पत्ति और धार्मिक पुरुषार्थ एवं परिश्रम आदि से धन आदि ऐश्वर्य प्राप्त करना चाहिये। २५ वर्ष के लगभग इस आश्रम के कार्य करके आयु के तृतीय भाग में वनस्थो होकर विशेष ध्यानोपासना वा योग समाधि द्वारा धर्म का निश्चय करके आयु के चतुर्थ भाग में सर्वत्यागी रूप संन्यासी होना चाहिये।

परन्तु आज कल प्रायः बाल एवं वृद्ध विवाह द्वारा इसके विपरीत होता है। बाल विवाह, सदाचार की जड़ पर कुल्हाड़ा चलाता हुआ अविद्या का प्रचार करता है। शारीरिक मानसिक बल का सर्व नाश सा करता है। मनुष्य कामी,

क्रोधी, लोभी आदि बना हुआ सब प्रकार के दुराचारों में फँस कर निज दुःख का कारण; और देश और धर्म तथा जाति की अवनति (गिरावट) के मार्ग का साधक हो जाता है। जो कि वर्त्तमान में भारत जगदाचार्य देश के सङ्गप्रायः और देशों में दृष्टिगोचर हैं।

अविद्या के कारण प्रायः केवल एक आश्रम गृहस्थ रह गया है जिसमें मनुष्य उत्पन्न होकर (वर्षा के बुलबुले सा) वहीं समाप्त हो जाता है। और यदि ऐसे संस्कारों में शोक मोह वा किन्हीं और कारणों से कोई त्यागी भी होते हैं तो प्रायः उन में से कितनों के पीछे गृहस्थों के समान ऐश्वर्यवान् आदि होने की चिन्ता लगी रहती है। और इस विधि उनका यह बुरा उदाहरण आश्रमों के नाश का कारण हो जाता है।

वेद विषय में विस्तार भय से संक्षेपतः यह लिखना पर्याप्त समझा जाता है कि यह वेद और वेद से ही हो सकता है कि गृहस्थ लोग परोपकारी होसकें वा पूर्ण परोपकारी मनुष्य गृहस्थ हो सकें। जगत् के सब मनुष्य परस्पर मित्र भाव से एक दूसरे का सहायता-रूप उपकार करते हुये, सब मिलकर जगत् का ऐश्वर्य यथायोग्य सप्रेम निष्पक्ष और निष्कपट रूप से भोगें; वा शारीरिक, सामाजिक और आत्मिक सुखों को पूर्ण शान्ति से भोग सकें।

ब्रह्म नाम ईश्वर सम्बन्ध में कुछ लिखने से पूर्व जिस जीवात्मा को ब्रह्म स्वरूप का अवगमन (ज्ञान) कराना है उसको सावधान करना पहला कर्त्तव्य है। उस सावधानता का नाम यहां उसको निज (जीव) स्वरूप का अवबोधन

कराना है। अतः पहले जीव के स्वरूप को शब्दों में लाना चाहिये।

अघमर्षण मन्त्रों के नीचे संख्या १० से १७ तक अनेकों प्रमाण जीवस्वरूप निर्णायक लिखे गये हैं; और यत्रतत्र सन्ध्या की व्याख्या एवं टिप्पणी में जीवस्वरूप बतलाने तथा युक्ति प्रमाणों से सिद्ध करने का ध्यान रक्खा गया है जिसको पाठक वृन्द इस पुस्तक में पाकर प्रसन्न होंगे।

पर यहां यह बतलाना अत्यावश्यक है कि जीव के अणु स्वरूप होने से अल्पज्ञता, अल्पज्ञता के कारण आवृत्ति (दुहराने) की आवश्यकता है। मुक्तावस्था में आनन्दानुभवासक्ति और साधनाभाव से आवृत्ति का त्याग, अतएव अल्पज्ञता वृद्धि, उससे पुनः अविवेक, और फिर अविवेक कृत प्रकृति के संयोग से वासनाओं की जागृति, वासना (भोगेच्छा) वा विषयचिन्तन से फिर बन्धन होता है।

अज्ञान और अवतरण (अवतार) या अधःपतन (गिरावट) के दर्शन होने लगते हैं। जिसके कारण अज्ञानता एवं तामसी दशा में फंसकर अनेक पुरुषों के भ्राता (वैदिक ज्ञान तथा ईश्वर ध्यानोपासना शून्य स्त्री पुरुष सर्प रज्जुवत् अपने आपको) और मानस भ्रम से 'ब्रह्म' कह रहे हैं।

भ्रम वाच्य सर्वस्व नाशक अत्यन्त भयानक रोग में ऐसे रमे हुये हैं कि इसको मानने को मानो इतने दूर हैं कि भकार से तृतीय अक्षर वकार पर डटे हैं और उन्नति मार्ग से सर्वथा पीछे हटे हैं।

यदि भकार (भ्रम) को स्वीकृत कर लें तो ("ब्रह्मोडुपेन प्रतरेत् विद्वान्—" इस उपनिषद्वाक्यानुसार) भ्रम भंवर

से तरना और "भ"कार उत्तरवर्त्ती "म"कारागम्भित मोक्ष मार्ग में बढ़ना तो, वरन पुन २'म' आरब्ध मृत्यु रूपी ग्राह के मुख में ("यस्यच्छायाऽमृतं यस्य मृत्युः" के अनुसार) पड़ना होगा।

परन्तु वे तो प्रलय वा महारात्र्यारम्भ की नींद सोये हैं; और अपने सब संगियों को भी वही महत्तम निद्रा सुला एवं देश, धर्म और जाति को सर्वनाश का रोना रुला के मानने की दृढ़ प्रतिज्ञा कर चुके हैं।

अब यह वक्तव्य है कि विवेचनशील सत्यान्वेषी महानुभावों का कर्त्तव्य है कि "वेदाहमेतम्पुरुषम्महान्तमादित्य वर्णम्, इस ईश्वरोपदेशानुसार प्राकृत एवं आत्म तत्वान्वेषण, वेदाध्ययन और ईश्वरोपासना द्वारा, करके यथा शक्ति शीघ्र भ्रम से छूट सत्यता पर पहुँचें और सर्व साधारण को तत्त्व ज्ञान करा, ऋषि ऋण से मुक्त होते हुए दु:ख मय भव सागर से पार हों।

ब्रह्म = परमेश्वर

ब्रह्म शब्द का मुख्य वाच्य परमेश्वर है। और यहपुस्तक भी प्रकृति और जीव स्वरूप दिखाती हुई मुख्यतया सन्ध्या शब्द के वाच्य (यथा नाम तथा गुणा) की दृष्टि से देखते हुए यथा सम्भव वा यथा शक्ति ब्रह्म स्वरुप के बोधन में ही अपना सन्ध्यात्व समझती है।

इस कारण केवल संक्षेपतः ब्रह्म के कुछ गुण, कर्म और स्वभावों का नाम रूप से वर्णन किया जाता है जिससे

सच्चिदानन्द, निराकार, निर्विकार, निराधार, सर्वाधार, अजर, अमर, अभय, अनुपम, अनादि, अनन्त, नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, अत्यन्तमहान्, अत्यन्त सूक्ष्म, सर्वव्यापक, सर्वज्ञ सर्वेश्वर, सर्वसाक्षी कर्माध्यक्ष, सर्वशक्तिमान. जगत्कर्त्ता, हर्त्ता, दयालु न्यायकारी, अन्तर्यामी, अत्यन्त भजनीय, जगदीश्वर आदि नाम हैं।

सच्चिदानन्द (सत्+चित्+आनन्द) अर्थात् सत्य स्वरूप चेतन वा अत्यन्त ज्ञानी और आनन्द स्वरूप वा अत्यन्त आनन्दी। कोई कोई प्रकृति को सत्, जीव को चित् और ब्रह्म को आनन्द समझते हैं। उनको यह विचारना चाहिये कि तीनों पदार्थ सत्य हैं और तीनों की सत्ता नित्य है; जिसको सत् न कहेंगे अर्थात् जिसकी सत्ता वा सत्यता न मानेंगे वही मिथ्या और सादि ठहरेगा। फिर यदि ब्रह्म को चित् न कहेंगे तो विना ज्ञान के आनन्द कैसे हो सकता है। इस लिये जीव को सत्+चित् और ईश्वर को सच्चिदानन्द कहना ही ठीक है।

निराकार आदि नाम परमात्मा के नित्य हैं। ईश्वर का न कोई गुण, कर्म, स्वभाव अनित्य है और न अनित्य गुण कर्म आदि जन्य कोई नाम अनित्य। जीव अविवेक के कारण शरीर युक्त होने पर साकार और विवेक होने पर शरीर से मुक्त होने पर निराकार कहाता है। विपरीत इसके ब्रह्म नित्य विवेकी होने से नित्य मुक्त कहाता है।

माया, मोह वा अज्ञान आदि विकार की कल्पना अल्पज्ञ में ही हो सकती है, सर्वज्ञ में नहीं, अतः निर्विकार कहा गया।

निराधार इस लिये कहा गया कि केवल साकार (देहधारी) को आधार (आश्रय) की आवश्यकता होती है। परमात्मा को सर्वाधार इस लिये कहा गया है कि वह सब पदार्थों से सूक्ष्म, निरवयव, अत्यन्त महान् और सर्वव्यापक है। ऐसे ही और सब नामों का भाव जानो॥

ब्रह्म बोधिनी संध्या का महत्त्व।

यह सन्ध्या "यथा नाम तथा गुणाः" इस कहावत को चरितार्थ करती हुई वेद प्रकाश द्वारा अल्पज्ञ जीवकल्पित माया नाम मोह वा भ्रम से (तामस अहंकारकल्पित) शरीरी ब्रह्म को सर्वथा निकाल कर नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त स्वभाव, सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, सर्वेश्वर, सर्वसम्बन्धी सर्वहितैषी, सर्वाचार्य आदि सर्वोत्तम गुण, कर्म स्वभाव वाले सत्य ब्रह्म स्वरूप का अवबोधन कराती और मातावत् सर्व भूलोक के मनुष्यों को उत्तम गुण कर्म स्वभावों की शिक्षा देती हुई—छान्दोग्योपनिषद् लिखित इस उदाहरण से किः—(अल्प स्वरूप "अणु परिमाण" के कारण) चारों वेदों तथा अन्य १४ विद्या के ज्ञाता नारदादि अनेकों शाला महाशालाओं (को आत्मतत्वों के श्रवण मनन एवं निदिध्यासन के विना) आत्मबोध न होने से महर्षि सनतकुमार आदि के समक्ष समित पाणि (हाथ जोड़े) आकर शिक्षा ग्रहण करनी पड़ी—यह सिद्ध करती है कि धर्म वा सुखप्रद कर्त्तव्य कर्म एवं मोक्षानन्दप्रद उपासना के लिये आत्म-

ज्ञान की अवर्जनीयता है, और आत्म ज्ञान के लिये, यम नियमादि पूर्वक प्रतिहार धारणा, ध्यान, समाधि अथवा इस ब्रह्म बोधिनी सन्ध्या नामक पुस्तक के अध्ययन, अनुमनन एवं सर्वथा अनुकरण की अत्यावश्यकता वा तद्रूप कर्त्तव्यता है।

क्योंकि जिस विधि अस्वच्छ, अपवित्र, दुर्गन्धि युक्त, अन्य दुराचारी मूर्ख वा अनार्यावर्त्त आदि स्थान शुभ कार्य करने में बाधक होता है, अथवा मलिन दुर्गन्ध वस्त्र एवं शरीर चित्त, मन आदि को मलिन बना के शुभ कार्य करने के विचार का भी अवकाश नहीं देते; फलतः अविचार वा कुविचार से उत्पन्न (वा बढ़ा) तम (अज्ञान) लोभ, मोह, काम, क्रोध और मद युक्त अन्तःकरणों को घेर (जकड़) लेता है। और जीवात्मा शुभ को अशुभ, सीधे को उलटा एवं मिथ्या को सत्य आदि विपरीत ज्ञान (भावना) के भँवर में पड़कर कहीं का नहीं रहता।

इस लिये सर्व सज्जनों को उचित है कि अपने शुभार्थ इस (सन्ध्या) के आन्तरिक भावों को विचार कर उनका अनुसरण करें।

२—यह सन्ध्या, सन्ध्या शब्द के कालपरक अर्थ अर्थात् जिस में दिन रात मिलें वह समय; तथा क्रियात्मिक अर्थ अर्थात् जिस कर्म में जीवात्मा एक मात्र परमात्मा का ठीक ठीक ध्यान करता है उसकी कर्मरूप विधि सरल ढङ्ग से बताती हुई मनुष्य मात्र के लिये ब्राह्म्य भाव रखती है अर्थात् ठीक उसी विधि से भूगोल भर के सर्व निवासियों के उपकार के लिये उद्यत है कि जैसे परमपिता

ब्रह्म अपने अमृत पुत्र प्राणि मात्र को सदा नित्य प्रति वेद तथा मानसिक प्रेरणा द्वारा शुभ शिक्षा देता तथा उनकी सब प्रकार से रक्षा करता है।

सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, अत्यन्त शुद्ध, विवेकस्वरूप, अन्तर्यामी, सर्वसाक्षी तथा सर्वशक्तिमान् होते हुये बिना राग द्वेष निजनियमानुकूल सर्वप्रेरक है। दुष्ट से दुष्ट, पापी से पापी, अपवित्रादि से अपवित्रादि किसी प्राणी से (अल्पज्ञ अविवेकी निर्दयी आदि जीवों की भाँति) उक्त सर्व गुणों युक्त तथा सर्वथा निर्भय, पूर्ण दयालु सच्चा पिता आदि होने से, कभी घृणा नहीं करता, प्रत्युत सब के हृदयों में निर्लेप रूप से विराजता हुआ अशुभ से शुभ की ओर बिना बलात्कार शिक्षार्थ उदासीन भाव से प्रेरणा करता रहता है।

ऐसे ही यह सन्ध्या उपास्य उपासक परिचायक है। अर्थात् अल्पज्ञआत्माओं का परम वा अत्यन्त उपास्य परम पिता परमात्मा का शाब्दिक स्वारूप्य ज्ञान कराकर सम्यक दर्शन वा साक्षात्कार करने की विधि प्रत्यक्षतया बतला कर, सर्व दैशिक जातियों अर्थात् मनुष्य जाति मात्र के व्यष्टि तथा समष्टि रूप से सर्व मनुष्यों (स्त्रीपुरुषों) के लिये जो किसी प्रकार पढ़ सुनवा जान कर उपकृत होना चाहें संन्यास भाव से सर्व सम्भवतः "यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः" इस वेदीय शिरोधार्या शिक्षा के अनुसार कार्य क्षेत्र में उपस्थित होकर घोषित करती है कि:—जो चाहो लूट ले जाओ धर्म धन खड़े लुटाते हैं"

कल्पित साम्प्रदायक मूल वेद एवं सत् शास्त्र विरुद्ध पुस्तकों तथा सर्व कल्पित भेदों का निराकरण, उल्लङ्घन, वा अतिक्रमण आदि करके; ब्रह्म नाम वेद वा परमेश्वर की सत्सेविकावत् सर्वोपरि विराजमान हो सब की उन्नति का वास्तविक एवं सर्वोत्तम वैदिक मुक्ति द्वार खोले उच्चनाद से "वेदाहमेतम् पुरुषम् महान्तमादित्य वर्णन्तमसा परस्तात्। तमेव विदित्वाऽति मृत्युमेति नान्या पन्था विद्यते अयनाय" इस ईश्वरीय घोषणा के भाव को अपनी भाषा में घोषित कर रही है कि --हे जिज्ञासुत्रो ! मैं उपर्युक्त मन्त्रोक्त सृष्टि कर्त्ता. धर्त्ता, भर्त्ता, एवं हर्त्ता आदि जगदीश्वर को यथा विधि जानती हूं, वह सूर्य के समान. पर तमरहित प्रकाश वाला है जिसका सर्वथा निर्भ्रम ज्ञान एवं साक्षात् दर्शन पाके मोक्ष पद को प्राप्त होते हैं, इसके अतिरिक्त कोई दूसरा मोक्ष मार्ग नहीं है।

ऐसा अकट, अटल एवं सुदृढ़, युक्तियों तथा प्रत्यक्षादि प्रमाणों से पुष्ट, सर्वतन्त्र स्वतन्त्र, अभ्रान्त सिद्धान्त दिवस्वत् प्रकट करती हुई अपना 'सर्वोपरि उपयोग्यता निश्चिता कराती है। और सर्व जगदुपकार को लक्ष्य मानकर भूलोक भर के लिये शारीरिक, मानसिक, आत्मिक एवं सामाजिक आदि उन्नति के साधन बतलाती हुई समष्टि रूप से पृथिवी पर से त्रिविध दुःखों को साधारणतया दूर करने वा घटाने का कर्म परक संक्षिप्त ज्ञान प्रस्तुत करती है। और प्रायः सब भांति के शारीरिक, मानसिक आदि कण्टकों की निवृत्ति के सुगम एवं सरल कर्त्तव्य कायिक और मानसिक आदि उपायों का उपदेश करती हुई सर्वभूमि

के वासियों को मानसिक, शारीरिक एवं सामाजिक आदि दासता तथा बन्धन से छूटने की स्ववर्णमयी शिक्षा देकर भ्रात्रीय प्रेमामृत पिलाना चाहती है।

प्रश्न—सन्ध्या दो काल करनी चाहिये अथवा तीन काल?

उत्तर- दो काल ही करनी चाहिये, क्योंकि (१) दिन रात की सन्धि दो ही समय होनी है न कि तीन समय। (२) तीन काल सन्ध्या करना वेद के भी विरुद्ध है, जैसा कि लिखा है—उपत्वाऽग्ने दिवे दिवे दोषावस्तर्धियावयम् नमोभरन्त एमसि,, (सामवेद अ० १ खं० ८ मं० ४) अर्थात् हे ज्ञानदाता परमात्मन्! दया करो कि हम प्रतिदिन प्रातः और सायंकाल की विनय से भरपूर हो कर ध्यान (मन, बुद्धि) से आपकी समीपता प्राप्त करें। मनुस्मृति में भी लिखा है "न तिष्ठति तु यः पूर्वां, नोपास्तेयश्च पश्चिमाम्। स शूद्रवद् बहिष्कार्यः सर्वस्माद् द्विजकर्मणः॥ (मनुः अ० २ श्लो० १०३,) अर्थात् जो द्विज पूर्वकाल एवं पश्चिम की सन्ध्या का अनुष्ठान नहीं करता वह शूद्र के समान निखिल द्विज-कर्मों से च्युत करदेने योग्य है। "पश्चिमा पूर्व सन्ध्यायां किं पुण्यं चापि तत्र वै" (वाराहपुराणे अ० ११४, श्लो० १६) अन्यच्च—सायं सायं गृहपतिनों अग्निः प्रातः प्रातः सौमनसस्य दाता॥ १॥ प्रातः प्रातर्गृहपतिर्नो अग्निः सायं सायं सौमानसस्य दाता॥ २॥ (अथर्व १६। ७ ३, ४) "तस्मादहोरात्रस्य संयोगे ब्राह्मणः संध्यामुपासीत, उद्यन्तमस्तं यान्त मादित्यमभिध्यायन्" षड्विंशब्राह्मणे प्र० ४ खं० ५ इत्यादि प्रमाणों से प्रतीत होता है कि सन्ध्या दो ही काल में करना समुचित एवं युक्तिसंगत है।

प्रश्न—सन्ध्या करने की विधि क्या है ?

उत्तर—यद्यपि प्रत्येक मन्त्र की विधि प्रत्येक मंत्र के साथ ही लिख दी गयी है, तथापि सामान्य रूप से सन्ध्याविधि यहां पर भी लिख देते हैं। यम नियम का यथा शक्ति पालन करते हुए "अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति मनः सत्येन शुध्यति विद्या०" इस मनुप्रोक्त वचनानुसार शरीर, मन, बुद्धि, तथा आत्मा को शुद्ध करते हुये, 'अपां समीपे नियतो नैत्यिकं विधिमास्थितः। सावित्रीमप्यधीयीत गत्वारण्यं समाहितः" इस मनुवचन के अनुसार शुद्ध तथा एकान्त जल युक्त स्थान में जाकर सावधान हो, 'त्रिउन्नतं स्थाप्य समं शरीरं, हृदीन्द्रियाणि मनसा सन्निवेश्य। ब्रह्मोडुपेन प्रतरेत् विद्वान्, स्रोतांसि सर्वाणि भयावहानि" इस उपनिषद् वाक्य के अनुसार किसी समतल अथवा चौरसस्थान में कुशा किंवा ऊनआदि के आसन पर बैठे। अनन्तर सिर, गला तथा छाती को एक सीध में करके पद्मासन, सिद्ध आसन् आदि कोई भी आसन (जिससे कटि आदि में कष्ट न हो) लगावे। अनन्तर शरीर के सम्पूर्ण अङ्गों की बाह्य क्रियाओं को स्थिर (रोक) कर, गायत्री मंत्र से स्त्री तथा पुरुष, सिर के बालों को संवार तथा त्रयी विद्या प्राप्ति की प्रतिज्ञा रूप गाँठ लगा कर, प्रथम आचमन-मंत्र से ईश्वर स्तुति प्रार्थना करते हुये आचमन; तथा अन्य मन्त्रों से अङ्ग-स्पर्श एवं मार्जन आदि करे। तदनन्तर प्राणायाम मन्त्र के नीचे लिखी विधि से सावधानतया प्राणयाम करे। पश्चात् अन्य मंत्रों से ईश्वरकी स्तुति प्रार्थना एवं उपासना विधि-पूर्वक करते हुये अघमर्षणमन्त्रार्थों सेपरमेश्वर को निष्पक्ष, दया और सत्य न्याय से यथाकर्मशुभाशुभ भोग रूप कर्मफलदाता निश्चित

करके, सन्ध्या के मन्त्रार्थों में बताये तथा भाव रूप से दर्शाये शारीरिक सामाजिक और मानसिक आदि कर्मों तथा आत्मानुभवों द्वारा शारीरिक, सामाजिक, मानसिक उन्नति तथा उन्नतियों की आत्म-भूत आत्मोन्नति करके परमाज्ञाकारी, सच्चे ईश्वर भक्त और ऐहिक तथा परमार्थिक परमसुख के भागी बनें

बालकों के निमित्त सूचनायें।

१—प्रायः प्रत्येक शब्द के कुछ पर्यायों को लिखकर अर्थात शब्द से उन पर्यायों का भावद्योतकी व्याख्या की गई है, इसलिये केवल "अर्थात्" से पूर्व के शब्दों को कण्ठस्थ करें।

२—स्तुति, उपासना, प्रार्थना आदि के मन्त्र गायत्री तथा अन्य मन्त्रों के नीचे प्रमाण रूप से लिखे हैं, वहाँ देखलें।

३—दार्शनिक एवं औपनिषद् तत्त्व बोधनार्थ प्रायः सप्रमाण व्याख्या करने से पुस्तक का आकर अगत्या बढ़ गया है।

ओ३म्

अथ ब्रह्म-बोधिनी सन्ध्या

नीचे लिखे आचमन-मन्त्र को तीन बार (अर्थों पर ध्यान लगाते हुए) पढ़कर आचमन करें * ॥

अथाचमन-मन्त्रः

अथ (अब) आचमन (जल पीने का) मन्त्रः = मन्त्र (लिखते हैं)

ओ३म् शन्नो॑ दे॒वी र॒भिष्ट॑य॒ आपो॑ भवन्तु पी॒तये॑। शं॒ यो र॒भिस्र॑वन्तु नः ॥

यजु० ३६ । १२ ॥

पदच्छेदः—ओ३म् । शम् । नः । देवीः । अभि । इष्टये । आपः । भवन्तु । पीतये । शम् । योः । अभि । स्रवन्तु । नः ॥

ओ३म् = परमात्मा (सब से उत्तम, मुख्य नाम ईश्वर का है। इसकी व्याख्या गायत्री मन्त्र के अर्थों में तथा अघमर्षण मन्त्रों में देखो।)।

शम् = शान्तिस्वरूप एवं शान्तिदाता परमेश्वर, अर्थात् परमात्मा वैदिक शिक्षा (वेदों में पुण्य की विधि और पाप का

---

* यदि जल न मिले तो केवल मन्त्र ही पढ़ें। जल न मिलने से सन्ध्या न छोड़ें।

निषेध) और मानसिक प्रेरणा (पाप कर्म में भय, लज्जा शंका, अनुत्साहादि और पुण्य में हर्ष, उत्साह, निर्भयता आदि) के द्वारा सदा धर्म रूप शान्ति अर्थात्, निर्वैरता निष्कपटता, निस्स्वार्थता, सार्वजनिक एवं प्राणिमात्र से यथायोग्य भ्रात्रीय व्यवहार आदि की शिक्षा देना है जो कि सुख का एक मात्र साधन है।

नः = हमारे ।

देवीः = सर्व प्रकाशक१ और आनन्ददाता अर्थात् सब जगत् को प्रकाशित, चमकीला वा दिखाऊ बनाने वाले अथवा प्रकट करने वाले और अपने ज्ञान से आनन्द देने वाले।

अभि = पूर्ण, सब प्रकार के।

इष्टये* = मनोकामना के लिए अर्थात् धर्म से प्राप्त सर्वोत्तम सुख के लिये।

आप = सर्वव्यापक परमेश्वर अर्थात् जो सब चराचर पदार्थों और स्थानों में अत्यन्तसूक्ष्म२ निराकार३ और निरवयव४

प्रमाणानिः—(१) न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः। तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥ मुण्डक ० ४२ ॥

* शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम् ६ । १ । ९२ ॥

(२) अणोरणीयान्महतोमहीयान्......श्वेताश्वतर ३ । २० ॥

(३) सपर्यगाच्छुक्र मकाय मव्रण...यजु० ४० । ८ ॥

(४) न चक्षुषा गृह्यते नापिवाचा० नान्यैर्देवै......तंपश्यते निष्कलं ध्यायमानः । मुण्डक० ५० ॥ (निष्कलं = निरवयवम्) ॥

होने से भीतर और [5] बाहर (वारपार) निरन्तर पाया जाता है।

भवन्तु = हों = (शम् भवन्तु = शान्ति दाता हों)

पीतये = रक्षा और उन्नति के लिए अर्थात् पापों से रक्षार्थ और पारलौकिक कर्मों में पूर्णानन्द देने वाली उन्नति के लिये।

शम् = शान्ति एवं सुख की।

योः = अभय की।

अभि = सब ओर से।

स्रवन्तु = वर्षा करें।

नः = हमपर।

अन्वयः--देवीः--देव्यः--आपः [ओ३म्] नः अभिष्टये पीतये शम् भवन्तु शंयोर्नः अभिस्रवन्तुः ॥

सर्वप्रकाशक, सर्वव्यापक, शान्ति स्वरूप परमेश्वर हमारे मनोरथ की प्राप्ति के लिये शान्तिदाता हो, (अपितु) सर्वथा शान्ति की वर्षा करें।

भावार्थः-- इस मन्त्र में उपदेश है कि:--हे मनुष्यो तुम लोग! ईश्वर को निरन्तर सर्वव्यापक एवं सर्वाध्यक्ष और सत प्रकृति रूप कारण जगत् अर्थात् अविदित अज्ञेय वा प्राणियों की ज्ञान-सीमा से नीचस्थ जगत्) को कार्य रूप में (विदित, ज्ञेय, वा उत्पन्न करके = ऊपर लाके) प्रकाशित करने

(5) तदेजति······तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः॥ यजु० 40॥ 5॥

वाला, सब का धारण, पोषण, नियमन, तथा सुधार (स्वस्थता) के लिये संहार वा कारण रूप करने वाला जान और मान, अपने सब प्रकार के मनोर्थों अर्थात् शारीरिक और मानसिक संसार सुखों, तथा आत्मिक (मोक्ष) आनन्द के लिये वेदों को पढ़ते हुये विहित धर्म और निषिद्ध अधर्म का साधारण ज्ञान, और संध्या समय (ब्रह्म मुहूर्त्त में) संसार के सब द्वन्द्व पूर्ण शान्ति हीन भोगों एवं भोग के पदार्थों से सर्वथा चित्त वृत्तियों वा आत्मिक चिन्तन शक्ति को रोक आत्मपरमात्म चिन्तन में लगा, परमाचार्य परमपिता से असाक्षात् वा साक्षात् रूप से यथा योग्य उक्त धर्माधर्मों तथा आत्म परमात्म तत्वों का विशेष वा पूर्ण ज्ञान प्राप्त करते हुये, विहित आहार विहार आदि कृत सात्विक अन्तःकरणों से ईश्वरोपासना द्वारा अपने (आत्मा) को सच्चा आस्तिक बना, वेद विहित (बताये) तथा प्रेरणा (उदासीन शिक्षा) प्रतिपादित (पुष्ट किये हुये) कर्मों को स्वतन्त्रता से करते रहो और निषिद्ध (रोके हुये) कर्मों को छोड़ दो वा मत करो और इस भांति निरन्तर ईश्वर परमपिता की सर्व सुख मौलिक आज्ञाओं का पालन करते हुये अत्यन्त ऐहिक तथा पारमार्थिक सुख को प्राप्त करो।

दूसरा भौतिक अर्थ।

देवीः = देव्यः = (उत्तम) गुण वाली।

आपः = जल की धारायें वा देशदेशान्तरों के जल

नः = हमारे।

अभि = इष्टये = यज्ञ वा अभिलाष पूर्त्ति के लिये । और
पीतये = सुख से पीने के लिये ।
शम् = शान्तानन्ददायक ।
भवन्तु = हों । और
शम् = रोगनाशक । और
योः = भय दूर करनेवाली अर्थात् रोगभयनिवर्त्तका (हटाने वाली) होकर ।
नः = हमारे ऊपर ।
अभि = सब ओर से ।
स्रवन्तु = वर्षें ।

दोनों का भावार्थ यह है कि:—

हे सब उत्तम गुणों और गुणयुक्त पदार्थों के प्रकाशक तथा व्यापक होने से सर्वाधिपति परमात्मन्! आपके अनुग्रह से सर्वगुणसम्पन्न जल हमको आरोग्य आदि सुख प्राप्त करा आनन्ददाता हों और रोग तथा रोगभय दूर करने वाले जल बहुतायत से वर्षें ॥

अथ स्पर्श विधिः ।

अब अङ्गों के छूने का ढंग लिखते हैं।

निम्न लिखित मन्त्र से "ओं वाक् वाक्" इसको बोलते हुये अनामिका और मध्यमा (बीच की) दो अंगुलियों से मुंह को। "ओं प्राणः प्राण" को कह कर दोनों नथुनों को, "ओं चक्षुः चक्षुः" इसको बोलकर आँखों को "ओं श्रोत्रं श्रोत्रम्" इसको पढ़, कानों को, "ओं नाभिः" इसका उच्चारण कर टूंड़ी को छूयें (आगे सुगम है)। ऐसे ही और वाक्यों को बोलते हुये अन्य अंगों प्रत्यङ्गों का स्पर्श कर शुद्धि और रक्षा के हेतु प्रार्थना करें।

अथेन्द्रियस्पर्श-मन्त्राः* ।

(अब इन्द्रियां छूने के मन्त्र लिखते हैं)

२-ओ३म् वाक् वाक्। ओ३म् प्राणः प्राणः। ओ३म् चक्षुः चक्षुः। ओ३म् श्रोत्रं श्रोत्रम्। ओ३म् नाभिः। ओ३म् हृदयम्। ओ३म् कण्ठः। ओ३म् शिरः। ओ३म् बाहुभ्यां यशोबलम्। ओ३म् करतल करपृष्ठे ॥

* —स्पर्श से विशेष स्मृति अभिप्रेत है॥

ओ३म्! = शुद्ध स्वरूप (अत्यन्त शुद्ध) सब के रक्षक और पोषक (पालने वाले) परमात्मन्!

वाक् वाक् = जाभ तथा वाणी अर्थात् स्थूल और सूक्ष्म करणों (बाहरी वा दृष्ट और भीतरी वा अदृष्ट इन्द्रियों) को पुष्ट, आरोग्य वा सत्त्व गुणी कीजिये। अर्थात् वैद्यकोक्त सात्विक आहारों आदि को खाते पीते हम ईश्वर शिक्षा का ध्यान रखें जिससे भूल न हो।

प्राणः प्राणः = फेफड़ा, नासिका तथा प्राण वा सूक्ष्म घ्राणेन्द्रिय को पुष्ट वा बलिष्ठ कीजिये। अर्थात् हम तमाल पत्र (तम्बाकू) मदिरा तथा अन्य सब मादक द्रव्यों को सर्वथा त्याग कर फेफड़े आदिको ईश्वर कृपा से पुष्ट रखें।

चक्षु चक्षुः = स्थूल तथा सूक्ष्म नेत्र इन्द्रियों को पुष्ट तथा रोगहीन कीजिये। अर्थात् वीर्य रक्षा और अति तीक्षण पदार्थो आदि के त्याग से दृष्टि बढ़ावें वा बनाये रखें।

श्रोत्रं श्रोत्रम् = कान तथा सूक्ष्म श्रोत्र इन्द्रियों को पुष्ट तथा

२ सर्व शरीर गतत्वकिन्द्रिय एवं ध्यान का नाभिचक्र मुख्य स्थान होने से त्वकिन्द्रिय है। हृदय (स्थान) (अपने स्थानो) मन के लिये प्रयुक्त हुआ है एवं शिर सर्व ज्ञानेन्द्रियों के लिये और कण्ठ उच्चारण और भोजन का मुख को अपेक्षा मुख्य साधन है। अतः यहां इन्द्रियों काप्रयोग शुद्ध है।

❀प्रत्येक वाक्य में "रक्ष, पोष आदि शब्द ऊपर से लाने होंगे॥

सात्विकी कीजिये। अर्थात् ईश्वरोपासना करते हुये हम सात्विक भोजन आदि से श्रोत्र दृढ़ बनावें।

नाभिः = टूँड़ी = नाभीचक्र वा व्यान* तथा समान एवं अपान (प्राण) को पुष्ट तथा नीरोग कीजिये। अर्थात् हम युक्त आहार विहार एवं प्राणायाम से नाभि तथा प्राणों को ठीक रखें।

हृदयम् = मन यथा इच्छायें वा मुख्य (प्राण) को स्थिर पुष्ट, बलिष्ठ वा सत्वगुणी कीजिये। अर्थात् हम मन चाहे खान पान का पूर्णतया बुद्धि से विचार कर उपयोग करते हुये मन को वश में लावें।

कण्ठः = गला, उच्चारण तथा उदान (प्राण) को पुष्ट, मधुर तथा स्पष्ट कीजिये। अर्थात् हम युक्त आहार आदि से गला ठीक रखें

शिरः = मस्तक वा बुद्धि (विचार शक्ति) को पुष्ट, तीव्र वा उच्च कीजिये। अर्थात् शुद्ध पुष्ट और सात्विक बुद्धि वर्धक आहार आदि एवं उपासना से बुद्धि को पुष्ट और उच्च बनावें।

बाहुभ्याम् = बाहों में। (सप्तम्यर्थे पञ्चमी)।

यशोबलम् = यश तथा बल दीजिये जिससे कि हम परोपकार करें। अर्थात् दुःख का भय कर के सदा अपयश से बचते हुये यश करके ईश्वर को धन्यवाद दें।

---

*नाभि समान प्राणका स्थिति स्थान एवं व्यान का केन्द्र है; अपान नाभि के नीचे होने से व्याख्या असंमत नहीं है।

करतल = हथेली वा हाथ नीचा (कंगाली) न हो अथवा हाथ पर हाथ रखे हुये हम निरुद्यमी निर्धन न हों प्रत्युत पुरुषार्थी बनें ।

करपृष्ठे = हाथ की पीठ वा हाथ ऊँचा हो, दूसरे के हाथ पर हो । अर्थात् हम धनवान् होकर दूसरों को दान दें ।

अथ मार्जन-विधिः ।

अब जल छिड़कने का प्रकार लिखते हैं :—

ओम्भूः पुनातु शिरसि...आदि प्रत्येक वाक्य को अर्थ विचारपूर्वक बोलते हुये अनामिका मध्यमा तथा कुशों के द्वारा शिर (सिर), आँख, गला, हृदय, नाभि, पाँव फिर सिर और सब अङ्गों पर क्रम से एक एक वाक्य को बोल एक एक अंग पर जल छिड़क आलस्य को दूर करें* ॥

अथेश्वर प्रार्थना पूर्वक मार्जन मन्त्रः ।

(अथ) अब (ईश्वर) स्वामी से (प्रार्थना) नम्रता से माँगने (पूर्वक) के साथ (मार्जन) अंगों, उपांगों पर जल छिड़कने के (मन्त्राः) मन्त्र लिखे जाते हैं ॥

---

* आलस्य न जान पड़ने पर भी अभ्यास न छोड़ें ।

ओम्भूः पुनातु शिरसि। ओम्भुवः पुनातु नेत्रयोः। ओम् स्वः पुनातु कण्ठे। ओम्महः पुनातु हृदये। ओम् जनः पुनातु नाभ्याम्। ओम् तपः पुनातु पादयोः। ओम् सत्यम्पुनातु पुनश्शिरसि। ओम् खम्ब्रह्म पुनातु सर्वत्र॥

ओ३म्=शुद्धस्वरूप परमेश्वर१ अर्थात् जो अत्यन्त सूक्ष्म और निरवयव (अखंड वा खंडरहित) वा एक अवयव होने से सर्वव्यापक होते हुये किसी भी वस्तु में (क्योंकि सब प्राकृतिक वस्तुयें उसी की बनाई, उससे अति स्थूल, और उसका यथार्थ रूप से जानी हुई हैं) लिप्त (सना वा आसक्त,) होकर न तो अशुद्ध हो सकता (आकाश, वायु अग्नि, जल, पृथिवी तथा उनसे बने सर्व पदार्थों में व्यापक रहता हुआ सदा शुद्ध रहता है) और नाही अत्यन्त ज्ञानी एवं विवेक स्वरूप होने से बन्धन के कारण अविवेक में फँस सकता है।

भू =प्राण आधार, प्राणपति (रक्षक) स्वयम्भू (न जन्मने वा मरने वाला) परमेश्वर।

१ यथ प्रमाणानिः (१) सूर्यो यथा सर्वलोकस्य चक्षुर्न लिप्यते चाक्षुषैर्बाह्यदोषैः। एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा न लिप्यते लोकदुःखेन बाह्यः। कठ० ५। ११॥

पुनातु =पवित्र करे अर्थात अविवेक दूर करके विवेकी वा सात्त्विकी बनावे अर्थात् हम वेद पाठ और ईश्वर उपासना करते हुये (सिर को निर्भ्रान्त निर्णयों) एवं शुभ स्मारक बनावें।

शिरसि=सर में=सर* को अर्थात् बुद्धि वा विचारों तथा चित्त को।

ओम्भुवः=दुःख भञ्जन शुद्धस्वरूप पिता अर्थात् लज्जा आदि द्वारा पाप करने से बचा दुःख की जड़ काटने वाला परमपिता।

पुनातु=पवित्र करे=पापों से बचावे अर्थात् हम काम, क्रोध आदि की दृष्टि से किसी को भी न देखें, और शङ्का लज्जा युक्त कामों को त्याग दें।

नेत्रयोः=दोनों आँखों को।

ओम् स्वः=सुखदाता सर्वरक्षक स्वामी परमपिता अर्थात् वेद के द्वारा अपनी परम हित-कारिणी आज्ञाओं (मनुष्य सुख साधनों) को प्रकाशित कर पितृक शिक्षा ग्रहण करने वाले धार्मिकों को सदा आनन्द वा सुख में रखने वाला सत्यपिता परमेश्वर।

पुनातु=पवित्र करे=आरोग्य रखे अर्थात् हम ईश्वर की शिक्षा पर चलते हुए युक्त आहार आदिसे निरोग रखें।

कण्ठे=गले को।

ओम्महः=शुद्ध स्वरूप सब से महान् परमेश्वर।

पुनातु=पवित्र करे=असत्य निकाल सत्य से भरे, अर्थात्

---

(२) सपर्यगाच्छुक्रम् .....शुद्धमपापविद्धम् कविर्मनीषी परि भूः स्वयंभूः ॥ यजु० ४० । ८ ॥ *द्वितीयार्थे सप्तमी ॥

सत्य संकल्प और दृढ़-प्रतिज्ञ तथा केवल सदभिमानी मिथ्याभिमान हीन बनावे, हम जो मन में हो वही कहें और अपने बचनों को पालते हुए यथार्थ वक्ता बने रहें और नम्रता पूर्वक आत्मगौरव (महत्व) को बढ़ावें और उसकी रक्षा करें।

हृदये = अन्तःकरणों और उनकी वृत्तियों वा शक्तियों को अर्थात् मन और उसकी इच्छाओं, एवं अहङ्कार, मिथ्या अभिमान और अन्यों का तिरस्कार करने वाली शक्ति को।

ओम् जनः = शुद्धस्वरूप जगत् का उत्पन्न, प्रकट करने वाला वा कारण से बनाने वाला।

पुनातु = पवित्र करे अर्थात् रोग आदि से बचावे तथा धर्मात्मा विद्वान् सर्व शुभगुणसम्पन्न पूर्ण बलवान् पिता माता से हमारी आगामी उत्पत्ति करे।*

नाभ्याम् = नाभि टूंड़ी को अर्थात् शरीर के आदि मूल को जो रज वीर्य्य की पहली ग्रंथि है।

ओम् तपः = तपस्वी, तेजस्वी, ज्ञानस्वरूप न्याय से दण्ड देने वाला परमेश्वर।

* यच्चित्तस्तेनैष प्राणमायाति । प्राणस्तेजसा युक्तः । सहात्मना यथा संकल्पितं लोकं नयति । प्रश्न० ३ ।१०॥ अर्थात् कर्मानुसारिणी वासनाओं के अनुकूल' जैसे जीवात्मा के संस्कार मरण समय होते हैं तदनुसार जैसा संकल्प होता है वैसा जन्म।

स्मरण रहे कि ऐसे माता पिता वे ही पा सकते हैं जो ऐसे सुयोग्य बने बिना आप भी सन्तान न उत्पन्न करें।

तुपुना = पवित्र करे अर्थात् हम जीवों को पाँव से कुचलने न चलें, न पाप करने को कहीं जावें किन्तु सदा परोपकार करते हुये जगत् में विचरें।

पादयोः = दोनों पाँवों को तथा उनके चलाने वाले मन को।

ओम् सत्यम् = शुद्ध स्वरूप, अविनाशी ब्रह्म अर्थात् सदा एकरस रहने वाला और महत्तम परमेश्वर।

पुनातु = पवित्र करे अर्थात् हम ईश्वरोपासक, सत्यग्राही उच्च और धार्मिक होते हुये निर्भय सत्याग्रही बनें तथा स्वार्थ सम्बन्धी मिथ्या व्यवहार, अन्याय आदि पापों से बचकर सदाचार और लोकोद्धार में लगें।

पुनः = फिर, मुख्य करके।

शिरसि = शिर को = बुद्धि और चित्त को अर्थात् विवेचन एवं निर्णय करके शुभाशुभ आदि का निश्चय करने के सात्विक अन्तःकरण, तथा पूर्व जाने हुये विषयों का स्मरण करने के राजस अन्तःकरण को।

ओम् खम् ब्रह्म = आकाश* के समान सर्वव्यापक शुद्ध स्वरूप सब से बड़ा परमेश्वर अर्थात् जिस प्रकार वायु से भी सूक्ष्म अदृश्य (न दीखने वाला) प्रकृति के बने शब्द तन्मात्र से (६० परमाणुओं से) बना हुआ आकाश सब पदार्थों के भीतर और बाहर सान्तर रहता है ऐसे ही जगत् के सब पदार्थों में परमात्मा निरवयव होने से निरन्तर भीतर और बाहर रहता है।

---

* आकाश कल्पस्थायी अर्थात् सृष्टि अवधि तक रहता है; इसलिये औपचारिक रीति से उपमा दी गई है। प्राकृतिक स्थूल भूत होने से वस्तुतः नित्य नहीं है।

पुनातु = पवित्र करे अर्थात् हम जगत्पिता की प्रेरणाओं को उपासनाकृत निर्मल बुद्धि से गृहीत करके पाप तथा अधर्म, स्वार्थ आदि से बचा पुण्य वा धर्म परमार्थ वा परोपाकर में लगावें।

सर्वत्र = सब अंग पत्यंगों को ॥

अथ प्राणायाम-मन्त्राः

ये मन्त्र जिनको अर्थ विचार पूर्वक मन मे पढ़ते हुये प्राणायाम करें।

४-ओम् भूः। ओम् भुवः। ओम् स्वः। ओम् महः। ओम् जनः। ओम् तपः। ओम् सत्यम् ॥

ओम्भूः = शुद्धस्वरूप१ प्राणपति२—३ सर्वरक्षक ४,

१ अथ प्रमाणानिः—सपर्यगाच्छुक्र मकाय मव्रण मस्नाविर ँ शुद्ध मपापविद्धम्। कविर्मनीषी परिभूःस्वयम्भू,र्याथातथ्यतो-र्थान्व्यदधा-च्छाश्वतीभ्यः समाभ्याः। यजुः० ४०। ८ ॥

२—यत्प्राणेन न प्राणिति येन प्राणः प्रणीयते। केन० ८॥

३—न प्राणेन नापानेन मर्त्यो जीवति कश्चन। इतरेण तुजीवन्ति यस्मिन्नेतावुपाश्रितौ। कठ० ५। ५ ॥

स्वयम्भू १ परमेश्वर अर्थात् अत्यन्त शुद्ध अपने उपासकों को सर्व दुर्गुणों से पवित्र करने वाले, प्राणों के प्राण और आधार, जीवित रखनेवाले, सर्वव्यापक न्याय से सुख दुःख दे सब को नियम से रक्षा करने वाले जन्म मरण से पृथक् नित्यमुक्त४ परमेश्वर।

ओम् भुवः = शुद्ध स्वरूप दुःखनाशक अर्थात् अपनी वैदिक तथा आभ्यन्तरिक (भीतरी मानसिक) (बलात्कार हीन उदासीन पितावत्) शिक्षा द्वारा ध्यानियों को पाप से बचा सदा दुःख से दूर रखनेवाले परमेश्वर।

ओम् स्वः = सर्वव्यापक, सर्वाधार, सुखदाता ५ परमेश्वर अर्थात् विद्वान् उपासकों को धर्म वा आज्ञा में चलने से सुख देने वाले परम पिता परमेश्वर।

ओम् महः = शुद्ध सर्वव्यापक महत्तम६ परमेश्वर अर्थात् सब जगत् में अभिव्यापक७-८ होने, से सब से बड़े महेश्वर

---

[४] स तन्मयो ह्यमृत ईशसंस्थो ज्ञः सर्वगो भुवनस्यास्य गोप्ता य ईशेऽस्य जगतो नित्यमेव नान्यो हेतुर्विद्यत ईशनाय ॥ श्वेताश्व० ६।१७॥

(५) एकोवशी सर्वभूतान्तरात्मा......तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम्। कठ० ५, १२॥

६—अणोरणीयान्महतोमहीयान्......कठ० २, २०॥

७—अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव। एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपंरूपं प्रतिरूपो बहिश्च। कठ० ५। ९॥

८—दिव्यो ह्यमूर्तः पुरुषः स बाह्याभ्यन्तरो ह्यजः, अप्राणो ह्यमनाः शुभ्रो ह्यक्षरात् परतः परः। मुण्डक० २४॥

ओम् जनः=परमेश्वर, जगत् को उत्पन्न९ ११ करने वाला अर्थात् प्रकृति वा परमाणुओं और सर्व जीवों के भीतर और बाहर सर्वव्यापक होने से, १२—१४ जन्म एवं मरण से नित्य मुक्त १३ साक्षी १४ रहता हुआ बिना किसी इन्द्रियादि करणों के कारण प्रकृति से सब लोक तथा सब पदार्थ और सब अलग्ड़ा १७ अवतार आदि प्राणियों के शरीर तथा अन्य पदार्थ रचकर प्रकृति को प्रकट करने वाला।

ओम् तपः=तेजस्वी अत्यन्त ज्ञानी, १५ दण्डदाता, सहिष्णु अर्थात् वैदिक शिक्षा के विरुद्ध चलने वाले अधर्मियों को

९—न जायते म्रियते वा विपश्चित् । कठ० २ । १८ ॥

१०—सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम् । सर्वस्य प्रभुमीशानं सर्वस्य शरणं बृहत् । श्वेताश्व० ३ । १७ ॥

११—अपाणिपादो जवनो गृहीतः पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः...... पुरुषम्महान्तम् । श्वेताश्व० ३ । १२ ॥

१२—तस्माच्च देवा बहुधा सम्प्रसूताः साध्या मनुष्याः पशवो वयांसि. मुण्डक० २९ ॥

१३—क्लेशकर्म विपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः योग० १ । २४ ॥

१४—द्वासुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते । तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति । श्वेताश्व० ४ । ६ । ऋग्वेद २ । ३ । १७ ॥

१५—यः सर्वज्ञः सर्व विद्यस्य ज्ञानमयं तपः ॥ मुण्डक ९ ॥

निष्पक्ष न्याय से यथा अपराध सत्पितावत् दंड देकर शुभ अर्थात् जगत् हितकारिणी शिक्षा देने वाला परमेश्वर।

ओम् सत्यम् = सत्यस्वरूप, अविनाशी वा एकरस परमेश्वर अर्थात् नित्य १६ शुद्ध १, बुद्ध १, मुक्त स्वभाव १३, १६ सर्वव्यापक सर्वज्ञ १ प्रकाशस्वरुप स्वयम्भू १ सदा एक सा रहने वाला न कभी एक वा अनेक अंश १६ वा कलाओं से अवतार (उतरने वाला) *८-९ बनके, नाहीं मायानाम अज्ञान १८ वा तम (अन्धेरे) से स्वसर्व प्रकाशता हीन

१६—वेदाहमेतमजरम्पुराणं सर्वात्मानं सर्वगतं विभुत्वात्। जन्मनिरोधम्प्रवदन्ति यस्य ब्रह्मवादिनो हि प्रवदन्ति नित्यम्॥ श्वेता० ३। २१॥

१७—ज्ञाज्ञौ द्वावजावीशानीशावजा ह्येका भोक्तृभोगार्थ युक्त अनन्तश्चात्मा विश्वरूपो ह्यकर्त्ता, त्रयं यदा विन्दते ब्रह्म एतत्। श्वेता० १। ९॥

१८—यतश्चोदेति सूर्योऽस्तं यत्र च गच्छति। तं देवाः सर्वेऽर्पितास्तदु नात्येति कश्चन॥ कठ० ४। ९॥ मिषतो वशी॥ ऋ०। १०। १९०। २॥

१९—न भागियोगो भागस्य॥ सांख्य० ५। ८१॥

---

* (टिप्पणी)—सूर्य्य आदि उच्च लोको से जो महानात्मा आत्मघात (आत्मोन्नति वा आत्मज्ञान के विरुद्ध कर्म करने,) के कारण पृथिवी आदि अन्धेरे वा अज्ञान से घिरे लोकों पर उतारे जाते हैं; वे अवतार कहाते है। अत्र प्रमाणानिः—"असुर्य्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः। तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति येके चात्महनोजनाः॥ यजु० ४०। ३। अन्यच्च, य अवतरति अवतार्यते वा स अवतारः॥

द्रव्य और गुण के बीच में आवरण आने की सिद्धि का कोई प्रमाण और उदाहरण न होने से ऐसे मानना भूल है, और इसलिए कि सर्वज्ञ

जीव बन के जन्म१३ मरण के चक्र में पड़ दुःखी सुखी १३, बालवृद्ध, सुद्ध अशुद्ध; बद्धमुक्त, दृश्यअदृश्य. आदि आदि न होवनोला किन्तु सर्वदा द्वन्द्वों से पृथक् रहने वाला, सब प्रकार के असत्य से सर्वदा सर्वथा दूर प्रत्युत अपने उपासक अवतारों आदि को भी अविद्या आदि पांच क्लेशों से छुड़ाउपर्युक्त द्वन्द्वों से प्रायः मुक्तः करने वाला अजर अमर परमेश्वर।

को स्वाभाविक सर्वज्ञता को नष्ट कर माया (मोह = अज्ञान) उसे जीव नहीं बना सकता, और नाही अविनाशी, अविकारी पुरुष (जो सर्वशक्तिमान् और ज्ञान आदि सब उत्तम गुणों में सब से अधिक और बड़ा होने के कारण ही "ब्रह्म कहाता है) नष्ट वा विकारी हो सकता और विकार की असम्भव कल्पना करने पर वह पुरुष ब्रह्म नहीं कहा जा सकता और फिर अविनाशी के स्वाभाविक नित्य गुण का वा नाम का नाश नामी का ही नाश होगा।

माया नाम प्रकृति से सम्पूर्ण ब्रह्म इसलिए आच्छादित (ढका) नहीं माना जा सकता कि माया या प्रकृति अन्धकार मय और स्वयं असमर्थ है। कुतः श्वेता० ६। १२ में निष्क्रिया कही गई हैं और ब्रह्म प्रकाशमय और सर्वशक्तिमान् है क्योंकि उपर्युक्त श्लोक में एकोवशी कहा है। और प्रकृति ब्रह्म को अपेक्षा अन्तवाली और ब्रह्म अनन्त प्रकृति से सब ओर बाहर, (कुतः, सव मावृत्य तिष्ठति। श्वेता० ३। १६) है।

अथ प्राणायाम विधिः

प्राणायाम चार प्रकार का होता है— १ "रेचक" अर्थात् श्वास को लगातार नाक से बाहर निकाल कर बाहर ही रोकना, फिर धीरे से धीरे भीतर लेना ।

(२) "पूरक" अर्थात् प्राण वायु को भीतर उदर में खींच कर रोकना, फिर निकाल देना । (३) "कुम्भक" अर्थात् न निकालना और न भरना किन्तु जहां का तहीं प्राण का

२०—स विश्वकृद्विश्वविदात्मयोनिर्ज्ञः कालकालो गुणी सर्वविद्यः प्रधान क्षेत्रज्ञपतिर्गुणेशः संसारमोक्षस्थितिबंधुहेतुः ॥ श्वेता:० ६ । १५॥

और यदि खण्ड ब्रह्म का ढका जाना मानें, सो भी ठीक नहीं क्योंकि ब्रह्म निराकार निरवयव है । (१) स भूमि सवत स्पृत्वा......

(२) पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतन्दिवि ।

(३) त्रिपादूर्ध्वमुदैत् ॥ यजु० ३१ । १, ३, ४ ॥

(४) मायान्तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनन्तु महेश्वरम् । श्वे० ४। १० ॥

(५) संयोगाश्च वियोगान्ताः ॥ सांख्य ५ । ८०

रोकना पश्चात् छोड़ देना। (४) "बाह्याभ्यन्तराक्षेपी" अर्थात् भीतर आते हुये प्राण के बाहर को लौटाना और बाहर जाते को भीतर को खीचना वा श्वास प्रश्वास के विरुद्ध क्रिया।

प्रत्येक प्राणायाम तीन तीन प्रकार का है--

(१) संख्यापरक अर्थात् कितने प्राणायाम किये।

(२) कालसम्बद्ध अर्थात् कितनी देर तक प्राण को रोका।

(३) देशवाचक अर्थात् कितनी दूर से वा दूर का प्राण खींचा वा भरा, कितनी दूर तक फेंका, वा उलटा चलाया इत्यादि।

इन उपर्युक्त चारों प्राणायामों में पहले "रेचक" को संख्या की अपेक्षा से इस प्रकार करना चाहिये कि मन्त्रों को मन से जपते; अर्थों पर ध्यान लगाये मल मूत्र इन्द्रिय स्थ अपान प्राण को यथाशक्ति ऊपर को खींचते हुये प्राण को धीरे धीरे साधारण बल से नाक से बाहर निकालते

---

(१) योग शास्त्रोक्त "रेचक प्राणायाम" आरम्भी उपासक, राजस तामस भोजियों के लिये है "पूरक और कुम्भक,, आरम्भी वा अभ्यस्त सात्विक भोजियों के निमित्त, और "बाह्याभ्यन्तराक्षेपी" पूर्ण अभ्यस्त योगियों के हितार्थ बताया गया है।

उक्त विधि विरुद्ध, "बाह्याभ्यन्तराक्षेपी" चौथा प्राणायाम (जो भगवत् गीता में महान् योगियों के अभ्यासार्थ विशिष्ट कियागया है, आरम्भियों को बताकर, शास्त्रविहित पूर्व तीन प्राणायामों का निषेध करना 'युक्ति' बुद्धि अनुभव एवं शास्त्र विरुद्ध होने से मूर्खता से विशेष कुछ नहीं है।

रहें* मन्त्रों का एकवार जप हो जाने पर निकली हुई परिश्वास बाहर ही रोक एकवार मन्त्रों को फिर मन से जपें और अर्थों को बुद्धि से विचारते रहें, एक वार जप के पश्चात् धीरे धीरे श्वास को भीतर लें और मन्त्र यथाशक्ति जपते जावें, और किंचित् (थोड़े) काल तक (जितने में) दो तीन श्वास लेलेवें प्राणायाम करने से रुकें। सावधान हो दूसरा प्राणायाम उसी प्रकार मन्त्र को जपते हुये परिश्वास बाहर निकाल, बाहर रोके हुये मन्त्रों को मन से ध्यान पूर्वक जप कर, पुनः धीरे धीरे भीतर लेते हुये जप करें और थोड़े समय यथा पूर्व रुकें। ऐसे ही तीसरा प्राणायाम करें, एवं चौथा, पाँचवाँ छठा और सातवाँ आदि करें। प्राणायाम मन्त्र जपते हुये सदा अर्थों पर ध्यान रखें एक एक सप्ताह, पक्ष वा

---

(२) ऐसे ही चतुर्थ प्राणायाम में प्राणापान की कल्पिता सन्धि का "सन्ध्या" नाम गढ़ कर सन्ध्या अर्थात् वेद शास्त्रोक्त सनातन मर्यादा, सदाचार, एवं प्रत्यक्षादि प्रमाण पुष्ट जगत् हितकारी ब्रह्मयज्ञ, के खण्डन का दुस्साहस करना 'सत्य सन्ध्या' नामक वास्तविक असत्य सन्ध्या के कर्त्ता एक नव्य वेदान्ती की दुष्टतम आत्मघातिका, जगद्रोहिणी नास्तिकता से भिन्न पदार्थ नहीं हो सकता ॥

*१—अधिक बल से प्राणायाम करने से रक्त की नाली (नस) फटने, फलतः विक्षिप्त हो जाने का भय है कभी कभी फेफड़ा तथा गला भी बिगड़ जाता है। अतः बहुत बल से प्राणायाम कभी न करें॥

(२) हाथ से नाक पकड़ कर प्राणायाम कभी न करें, क्योंकि यह ईश्वर स्वरूप का बोध कराने वाले शब्दार्थ के ध्यान में बाधक होता है॥

मास के पश्चात् एक एक दो दो प्राणायाम गिनती से बढ़ाये जा सकते हैं।

* २१, ३१, ४१, ५१, ६१ आदि प्राणायामों का ठीक अभ्यास हो जाने पर अपान निकालने वा रोकने में एक बार मन्त्रों के जपने के स्थान में दो दो बार जप कर उतने ही प्राणायामों का अभ्यास किया जा सकता है, फिर दृढ़ अभ्यास हो जाने पर तीन तीन बार जपने का, पुनः चार चार, पांच पांच आदि बार जपने का अभ्यास किया जा सकता है।

जब न्यून से न्यून १५ वा २५ पल (६ वा १० मिनट) रोकने का अभ्यास हो जावे, तब सात्त्विकी भोजन के संग पूरक तथा कुम्भक प्राणायाम का अभ्यास करें।

"रेचक" प्राणायाम पहले इसलिये करना चाहियेकि –(१) आरम्भी बालधी प्रायः तमोगुणी (ठंढ़े, बे रस अर्थात् मट्ठा वा मक्खन निकाला दूध आदि, दुर्गन्धित, बहुत बासी झूठे वा अपवित्रादि), तथा रजोगुणी (कड़वे, खट्टे, नोन के वा अति खारे, अतिउष्ण=गरम तीक्ष्ण, लाल मिरच आदि, रूखे अर्थात् विना शाक वा घृत के और दाह करनेवाले) भोजन खाते हैं जो प्राणवायु को दुर्गन्धित कर देते हैं।

२- जो वायु पूरक में भीतर जाती है वह पहले तो भीतरी प्राणों को शुद्ध करने के लिये बाहरी वायु की अपेक्षा अत्यन्त थोड़ी (अल्प) होती है, दूसरे मुख वा नासिका में

* १६ की आयु तक ११ प्रा० । २५ तक २१, पीछे अधिक करें।।

से घुसते हुये ही स्वयं दुर्गन्धित (बसीली) होने लगती है, और इस लिये भीतरी प्राणों को यथोचित शुद्ध नहीं कर सकती, जो यथापूर्व अशुद्ध से ही रह जाते हैं। यदि इसके विपरीत परिश्वास बाहर निकाल कर बाहर ही रोकते हैं तो वह अशुद्ध वायु, बाहर शुद्ध वायु के सागर में पड़ कर शीघ्र शुद्ध हो जाती है और फिर भीतर जाकर भीतर के थोड़े से बचे हुये प्राण को बहुत शुद्ध कर देती है—यहां तक कि कई वार के प्राणायाम में प्रायः सब अशुद्धि जाती रहती है॥

यद्यपि पूरक और कुम्भक रेचक से कुछ सुगम हैं, परन्तु चित्त रोकने में प्रायः समान उपकारी हैं। अतः जो गृहस्थ आदि राजसी भी भोजन पान करते हैं उनके लिये एक मात्र रेचक अधिक लाभदायक है॥

अघमर्षण-मन्त्रों से पूर्व प्राणायाम से उत्पन्न हुई उष्णता वा अशान्ति को दूर करने के लिये "शन्नो देवी ....." इत्यादि मन्त्र से तीन वार फिर आचमन करें, उसके पीछे अघमर्पण के तीन मन्त्रों द्वारा सृष्टिकर्त्ता, भर्त्ता हर्त्ता परमात्मा की स्तुति ध्यान लगा कर अन्तःकरण (मन, बुद्धि आदि) से करें, और परमेश्वर को सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, अन्तर्यामी, कर्म फलदाता आदि जानकर पापकरना छोड़दें॥

अथाघमर्षण-मन्त्राः

(अथ) अब (अघ) पापकर्म (मर्षण) सहने दबा लेने वा दूर करने के (मन्त्राः) मन्त्र लिखे जाते हैं :—

५-ओ३म् ऋतञ्च सत्यञ्चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत । ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः ॥

६-ओ३म् समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत । अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी ॥

७-ओ३म् सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत् । दिवञ्च पृथिवीञ्चान्तरिक्षमथो स्वः ॥

ऋ० मं० १० सू० १९० मं० १, २, ३ ॥

पदाः—१-ओ३म् । ऋतम् । च । सत्यम् । च । अभि । इद्धात् तपसः । अधि । अजायत । ततः । रात्रि । अजायत । ततः । समुद्रः । अर्णवः —२—ओ३म् । समुद्रात् । अर्णवात् । अधि । संवत्सरः । अजायत । अहः । रात्राणि । विदधत् । विश्वस्य । मिषतः । वशी ॥

३—ओ३म् । सूर्याचन्द्रमसौ । धाता । यथा । पूर्वम् । अकल्पयत् । दिवम् । च । पृथिवीम् । च । अन्तरिक्षम् । अथो । स्वः ॥

ओ३म = (१) निराकार १ (२)अत्यन्त महान २ (३) अत्यन्त सूक्ष्म २ *(४) सर्वव्यापक ३-४ (५) सर्वज्ञ १, ५

(१) देखो पृ० ४२ प्र० १ ॥

(२) अणोरणीयान्महतो महीयानात्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम् । तमक्रतुः पश्यति वीतशोको धातुः प्रसादान्महिमानमात्मनः ॥ कठ० २ । २० ॥

(३) स भूमिं सर्वतः स्पृत्वाऽत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् यजु ॥ ३१ ।१॥

(४) देखो पृ०४३ प्रा० ८ ॥

(५)एष सर्वेश्वर एष सर्वज्ञ एषोऽन्तर्याम्येष योनिः सर्वस्य प्रभवाप्ययौ हि भूतानाम् ॥ माण्डूक्य० ६ ॥

* अत्यन्त सूक्ष्म (पतला = बारीक = फाइन) और महान् ये दोनों परस्पर विरोधी नहीं किन्तु सर्वथा सहकारी और सहायक हैं, किन्तु जो पदार्थ अत्यन्त सूक्ष्म नहीं वह सर्वव्यापक नहीं हो सकता, और अत्यन्त महत्ता के लिये सर्वव्यापकता अत्यन्तावश्यक एवं अवर्जनीय है ।

(६) सर्वाधार २१ (७) सर्वेश्वर ५-८ (८) कर्माध्यक्ष वा कर्म फल दाता ६ (८) सर्व शक्तिमान् (१०) सृष्टि कर्त्ता (११) परमात्मा ।

(१) सत्य स्वरूप होने से अविकारी वा अपरिणामी, अजन्मा (बे बना) होने से निरवयव वा खण्ड हीन, और नित्य मुक्त होने से बन्धन रूप शरीर कभी भी न धारण करने वाले अतएव नित्य "निराकार"।

(२) परमाणु समूह वा कारण प्रकृति और उससे बने हुये जगत् के ठहरने के स्थान में निरन्तर रहते हुये उस सब स्थान के सब ओर बाहर अनन्त एवं अत्यन्त 'महान्"।

(३) सब जड़ पदार्थों में सब से छोटे, किसे भांति टुकड़े टुकड़े न किये जा सकने वाले और किसी भी अन्तःकरण (बुद्धि, मन आदि) वा इन्द्रियों से न देखे जा सकने वाले; केवल योगस्थ आत्मा ही की दृष्टि में आने वाले जो प्राकृत

---

(६) तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके । तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः ॥ यजु ४० । ५ ॥

(७) तमीश्वराणाम्परमं महेश्वरन्तन्देवतानाम्परमञ्च दैवतम् । पतिम्पतीनाम्परमम् परस्ताद् विदाम देवम् भुवनेशमीड्यम् ॥ श्वेता० ६ । ७ ॥

(८) स कारणं करणाधिपाधिपो न चास्य कश्चिज्जनिता न चाधिपः ॥श्वेत० ६ । ९ ॥

(९) एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेताः केवलो निर्गुणश्च॥ श्वेताश्वतर० ६ ।११॥

परमाणुओं हैं जीवात्मा उन मे भी अत्यन्त छोटा है १०-१७; उससे भी अति सूक्ष्मतम (सब से पतले) परमेश्वर, और इसलिये निरन्तर सब परमाणुओं तथा उनसे बने जगत् के पदार्थों अपितु जीवात्माओं में भी भीतर बाहर, सब ओर से सदा प्रविष्ट (घुसे हुए) एवं अत्यन्त "सूक्ष्म"।

(४) फलतः जगत् के प्रत्येक लोक, लोक के प्रत्येक सूक्ष्म एवं स्थूल पदार्थ, प्राणियों (जीवात्माओं) और उनके स्थूल, सूक्ष्म तथा कारण तीनों देहों के प्रत्येक अङ्ग और अवयव में; सब देहों, स्थानों, पदार्थों और लोकलोकान्तरों के बीच के प्रत्येक सूक्ष्म स्थूल पदार्थ तथा आकाश (वायु से सूक्ष्म प्राकृत स्थूल भूत) में और फिर सब जगत् के सब ओर बाहर अनन्त और नित्य व्यापक अथवा स्थित रहने वाले एवं "सर्वव्यापक"।

१० एषोऽणुरात्मा चेतसा वेदितव्यो यस्मिन् प्राणः पञ्चधा संविवेश।। मुण्डक० ५२।।

११ बालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च। भागो जीवः स विज्ञेयः स चानन्त्याय कल्पते।। श्वेता० ५। ९।।

१२ एतत्प्राणान् गृहीत्वा स्वे शरीरे यथा कामंपरिवर्त्तते (भ्रमति)।। बृह० २। १। १ ।।

१३ स वा एष आत्मा हृदि।। छा० ८। ३। ३।।

१४ उत्क्रान्तिगत्यागतीनाम्।। वेदान्त० २। ३। १९।।

१५ व्यवस्थातोनाना।। वैशेषिक० ३। २। २०।।

१६ येषमानाः समनसो जीवा जं वेषु मामकाः।। यजु० १९। ४६।।

१७ शर्गों, प्राची···वयंद्विष्मः उद्वयन्तमसः, चित्रं देवानां, पश्ये-आदि, धियोयोनः। संध्यायम्।। जीवात्मो० अ ८। ७। ६७।।

(५) सर्वव्यापक (अर्थात् अत्यन्त सूक्ष्म अनन्त स्वरूप और एक पदार्थ मात्र) होने से अपने किञ्चिद्देश में रहने वाले सर्व प्राकृत परमाणुओं, उनसे बने जगत् के सब जड़ पदार्थों, और मुक्त और बद्ध जीवात्माओं का सब ओर से, आश्रय, आधार वा साधने (सहारने) वाला "सर्वाधार"।

(६) सर्वधार होने से सब स्थानों, लोकों और प्राणियों के अन्तःकरणों, अपितु जीवात्माओं १८·१९ में भी सर्वतः सर्वदा एक रस व्यापक रहने से सर्वज्ञ अर्थात् अपने [अपरिणामी वा न बदलने वाले, पूर्ण अनन्त एक रस और क्षय (घटने) वृद्धि (बढ़ने) रूपी व्यभिचार रहित] ज्ञान से, जड़ अर्थात् सामर्थ्य और ज्ञानहीन जगत् के सर्व पदार्थों और चेतन प्राणियों तथा उनके कर्म और भोग आदि को सदा यथार्थ और पूर्णतया जानने वाले अतः "सर्वज्ञ"।

(७) सर्वव्यापक, सर्वाधार तथा सर्वज्ञ होने हुये सब जड़ चेतन जगत् के भीतर और बाहर भी होने से अपनी अनन्त सामर्थ्य और असीम ज्ञान के अल्प मात्र से लीलावत् सब जड़ जगत् का रचन, धारण, पोषण और संहार (नाश) करके, और सब चेतन प्राणियों को पितावत् शिक्षा देते हुये अत्यन्त न्यायी राजावत् कर्म फल भुगाकर सर्व पदार्थों के यथार्थ प्रयोग एवं सार्थकता के लिये और जीवों के हितार्थ अपने वश (अधिकार) एवं नियम में रखने वाले "सर्वेश्वर"।

---

१८ एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा एकं रूपं बहुधा यः करोति। तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम्॥ कठ० ५।१२॥

१९ यः आत्मनि तिष्ठन्......अन्तर्यामी श०॥

(८) सर्वेश्वर होने से सर्व प्राणियों को पूर्व सृष्टि या पूर्व जन्म के कर्म, वासना तथा सुदृढ़ संकल्पानुसार नाना योनियां विविध शरीर, और भूत एवं वर्त्तमान देहके कर्म और वासनानुसार भांति भांति के सुख दुःख आदि निष्पक्ष न्याय तथा दया से देने वाले एवं "कर्माध्यक्ष' कर्मफल दाता"।

९ न्यूनाधिक न होने वाले अनन्त बल, २० वीर्य, तेज, साहस, पराक्रम, शासनशक्ति, ज्ञान, न्याय, दया, सत्य आदि सर्व धार्मिक गुण युक्त, काम, क्रोध, असत्य अन्याय आदि दुर्गुणों वा निर्बलताओं और अविद्या आदि (जीव के) क्लेशों से सर्वदा परे और बिना किसी की सहायता के सर्व प्रकृति और जगत् का धारण२१ जगत् रचना, रक्षा और संहार करने में समर्थः इन्द्रिय और अन्तःकरण के बिना भी सबके गुण रखने वाले "सर्व शक्तिमान्"।

१० सब प्राकृतिक परमाणुओं के भीतर तथा बाहर भी रहने से बिना हाथ पाँव आदि२२ इन्द्रियों और साधनों आदि

२० तेजोसि तेजो मयि धेहि वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि, बलमसि बलं मयि धेह्योजोस्योजो मयि धेहि, मन्युरसि मन्युं मयि धेहि, सहोसि सहोमयि धेहि ॥ यजु० १९ । ९ ।'

२१ हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्। स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

२२ देखो पृ० ४४ प्र० १० ।

के* सदादिक तीन प्रकार के परमाणुओं रूपी प्रकृति से विधिवत् सब लोक, लोकान्तर तथा उनके अवयव, अन्य सब पदार्थों और सब प्राणियों के शरीरों को बनाने वाले "सृष्टिकर्त्ता" २३—३६।

२३ स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा यत्र देवा अमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त ॥ यजु० ३२। १०॥

२४ प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परिता-बभूव। यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥ ऋ० मं० १०। सू० १२१। मं० १०॥

२५ देखो पृ० ५६ प्र० १८॥

२६ यः आत्मनि तिष्ठन्नात्मनोऽन्तरो यमात्मा न वेद यस्यात्मा शरीरम् ॥ अन्तर्यामी ब्राह्मणं ॥

२७ न तस्य कार्यं करणं च विद्यते न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते। श्वेता० ६। ८॥

२८ देखो पृ० ५७ प्र० २०

२९ आदिः स संयोग निमित्तहेतुः ॥ श्वेता० ६॥ ५॥

३० निष्कलं...... श्वेता० ६। १९॥

३१ यद्वाचानभ्युदितं येन वागभ्युद्यते... केन० १। ४॥

३२ यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम्। तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥ केन० १। ५॥

* इन्द्रियों और साधनों आदि की आवश्यकता शरीर धारी अन्त वाले प्राणियों को अपने शरीर से बाहरी क्रिया के लिये होती है। न कि शरीर के भीतरी बोलने, सुनने, विचारने आदि क्रियाओं के लिये फिर अनन्त परमात्मा को अपनी भीतरी क्रियाओं के लिये हाथ पांव आदि की आवश्यकता कैसे हो सकती है?

(११) अत्यन्त सूक्ष्म, सब पदार्थों को निरन्तर व्याप्त किये हुये सब से बाहर और सब जीवों से उत्कृष्ट (उत्तम), जीवों और प्रकृति से अतिसूक्ष्म और सब प्राणियों के अन्तर्यामी आत्मा "परमात्मा"।

अभि* = सब प्रकार के अनन्त, अपरम्पार, एकरस और अव्यभिचारी (न घटने बढ़नेवाले)।

इध्दात् = (ञिइन्धी दीप्तौ ज्ञाने च) प्रकाश तथा ज्ञान स्वरूप, एवं जगत् प्रकाशक और वेद (ज्ञान) उपदेशक परमेश्वर से अर्थात् जगत्कर्त्ता की (सर्वज्ञ, सर्वाधार और सत्य स्वरूप होनेसे) उस प्रकाशन (उत्पादन) और ज्ञातृ (जानने की) शक्ति से जिस से वह सदा सर्व प्रकृति (परमाणवों) को सामूहिक रूप से (सबको एक साथ) तथा एक२ पदार्थ के लिये व्यष्टि रूप से (अलग अलग), और सब जीवात्माओं, उनके कर्म फला आदि को पृथक् २ अगली सृष्टि तक एक सा, पूर्णतया, यथार्थ और निर्भ्रान्त जानता रहता है। और

---

(३३) एतावानस्य महिमातो ज्यायांश्च पूरुषः । पादोऽस्यविश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥ यजु० ३१ । ३ ॥

(३४) त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत्पुनः । ततो विष्वङ् व्यक्रामत्साशनानशने अभि ॥ यजु० ३१ । ४ ॥

(३५) तमीशानं जगत स्तस्थुषस्पतिं धियजिन्वमवसे...यजु० २५।१८ ॥

(३६) वेदाहमस्य भुवस्य नाभि वेद द्यावा पृथिवी अन्तरिक्षम् वेद सूर्यस्य बृहतो जनित्रमथो वेद चन्द्रमसं यतोजाः यजु० ।।२३ । ६० ॥

* शब्दों को कुछ भाषा के नियम में लाने को ये ३ शब्द पहले लिखे गये ॥

तपसः ३७ = (तप सन्तापे, दाहे, ऐश्वर्येच) अत्यन्त ऐश्वर्यवान् और सर्व सामर्थ्यस्वरूप जगदीश्वर से अर्थात् अनन्त • तेज,ज्ञान बल, प्राक्रम आदि नित्य गुणों, प्रजारूप चेतन जीवात्माओं और जड़ (ज्ञानहीन) प्रकृति रूप नित्य ऐश्वर्य वाला एवं अनन्त वीर्य, और अपरम्पार ज्ञानमय तप युक्त सर्वशक्तिमान् (अपने किञ्चित् मात्र ज्ञान और सामर्थ्य से निज अनन्त स्वरूप के अल्प देशस्थ) सर्व प्रकृति कारण एवं कार्य जगत् का धारण जगत् रचना और नियमन (नियम से चलाना) आदि करके संहार आदि करने वाले परम पिता परमेश्वर से।

ऋतम् = पूर्ण, अनन्त, और विविध विज्ञान अर्थात् परा आध्यात्मिक अर्थात् ब्रह्म और जीवों के गुण, कर्म और स्वभाव के ज्ञान, विज्ञान: और उपासना काण्ड की: और अपरा (प्रकृति, प्राकृतिक जगत्); और कर्मकाण्ड की · अर्थात् आधिदैविक और आधिभौतिक, (विद्याओं के भण्डार) कोष, ऋग्, ३८ यजु, साम, और अथर्व, चारों वेदों को क्रम से अग्नि, ३८–४० वायु, आदित्य और अंगिरा चार सब से पहले उत्पन्न हुये महर्षि देवों के (मुक्ति से लौटने के कारण) अत्यन्त

(३७) स सर्वज्ञः सर्वविद्यस्य ज्ञानमयं तपः ।। मुण्डक० ९ ।।

(३८) तस्माद्यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ।। यजु० ३१ । ७ ।।

(३९) अग्नेर्ऋग्वेदो वायोर्यजुर्वेदः सूर्यात् सामवेदः ॥ शतपथ ब्रा० ११ । ४ । २ । ३ ।।

(४०) अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम् । दुदोह यज्ञ सिद्ध्यर्थमृग्यजुः सामलक्षणम् ।। मनु० १ । २३ ।।

शुद्ध अन्तःकरणों में सृष्टि की आदि में व्यापक एवं अन्तर्यामी होने से साक्षात् रूप से ।*

च = और ।

सत्यम् = सत्, रज, ४१-४५ और तम, तीन गुण रूपा

सृष्टि के पूर्व की दशाः—

(४१) तमआसीत्तमसा गूढमग्रेऽप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम् । तुच्छ्येनाभ्वपिहितं यदासीत्तपसस्तन्महिना जायतैकम् ॥ ऋ० १० । १२९ । ३ ॥

(४२) आसीदिदन्तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम् । अप्रतर्क्यमविज्ञेयम्प्रसुप्तमिव सर्वतः ॥ मनु०, १ । ५ ॥

(४३) इदमेक एवाग्र आसीत् नान्यत्किञ्चन्मिषत् । स ईक्षत लोकान्नु इति ॥ एतरेय० । १ । १ ॥

(४४) विरक्तस्य तत्सिद्धेः ॥ सांख्य २ । २ ॥

(४५) सत्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः, प्रकृतेर्महान् महतोऽहंकारोऽहंकारात् पञ्चतन्मात्राण्युभयमिन्द्रियं, तन्मात्रेभ्यः स्थूलभूतानि पुरुष इति पञ्चविंशतिर्गणः॥ सांख्य १ । ६१ ॥

* परमात्मा चारों वेद ऋषियों को पृथक् पृथक् शनैः शनैः पढ़ाता रहा किन्तु वे अल्पज्ञ थे, और निराकार से साकार का शिक्षा ग्रहण करना कठिनतम होने, तथा भिन्न भिन्न बुद्धि के कारण एक एक वेद पढ़ाया' कभी चारों एक संग कभी पृथक् पृथक्, समझ कर मेल से पढ़ते रहे ॥

प्र०—कैसे पढ़ाये ?

उ० वही शब्द जो वेदों में हैं वही पढ़ाये गये यथार्थ (हूबहू) सब शब्द और अर्थ शाब्दिक और आर्थिक सम्बन्ध सहित ।

प्र०—कैसे शब्द बोला ?

उ० जैसे आत्मा और मन में बोला, सुना और समझा जाता है ॥

कारण प्रकृति अर्थात् "सत्" प्रकाश, शान्ति, शुद्धि, स्वच्छता आदि धर्म युक्त, और (समीपस्थ जीव में) सत्य ज्ञान, वैराग्य, दयालुता, निर्भयता, न्याय, विवेक, सदभिमान, धर्म, नम्रता, आस्तिकता आदि शुभ गुणों का कारण; 'रज' मिश्रित प्रकाशाप्रकाश, शुद्धि अशुद्धि, तथा और सब शुभाशुभ मिले हुये गुणों वा धर्मो सहित, अति रागी, सदा यशस्कामी (नाम के काम करने वाला) विशेष क्रिया युक्त (चञ्चल) बनाने वाला; और "तम" अन्धकार, अशान्ति, आलस्य, अशुचि, अवैराग्य, नास्तिकता, अधर्म अज्ञान, असत्य, अन्याय, अविवेक उत्पन्न करने तथा बढ़ाने वाला; इन तीन प्रकार के परमाणुओं के संगठन वा समूह की साम्य (एक समान अर्थात् स्वीकृति विकृति से भिन्न परमाणु दशा कारण प्रकृति अर्थात् मिट्टी से घड़े के समान जगत् बनने की सामग्री कार्यरूप में लाई जाकर। च = तस्मात् सत्यात्४५, ४७ = और [ईश्वर के ईक्षण(ज्ञान के योग) से जीवों सहित संचालित वा क्रियावान् हुई] उस कारण प्रकृति (परमाणुओं) से (उष्ण ऋतु, में वायु-कृत मृत्तिकादि के डंलोल वत्) महत्तत्व* (सब से बड़ा

(४६) सत्वादीनामतद्धर्मत्वं तद्रूपत्वात् सांख्य० ६। ४९॥

(४७) एकोवशी निष्क्रियाणां बहूनामेकं बीज बहुधा यः करोति श्वे० ६। ११॥

* ईक्षण = विचार (१) प्राण (२) श्रद्धा = बुद्धि ३ आकाश (४) वायु (५) अग्नि (६ जल (७) पृथिवी (८) ज्ञान और कर्म इन्द्रियां

प्राकृत कार्य पदार्थ), ब्रह्माण्ड (.सब से बड़ा अण्डाकार), विराट् (सबसे बड़ा अण्डाकार चमकता हुआ पदार्थ); जिसकी किञ्चिन्न्यून सूक्ष्म ४८ एक विशेष सत्वाली ४६-५३ दशा, विवेक करण, (साधन) अर्थात् बुद्धि, दूसरी रज ४६ विशिष्ट* अवस्था अर्थात् स्मृति करण (चित्त) है] महतत्त्व से अहङ्कार(अभिमान), अहङ्कार से रजप्रधान (सङ्कल्प-विकल्पकरण) मन, मन की अपेक्षा कुछ स्थूल ४८ सत् प्रधान ५ ज्ञानेन्द्रियां रजप्रधान ५ कर्मेन्द्रियां और तमप्रधान ५ तन्मात्रा ४६-५५ (शब्द,स्पर्श, रूप,

---

(९) मन (१०) अन्न (११) वीर्य (१२) तप, (तपोऽधिष्ठान सूक्ष्म शरीर) (१३) मन्त्र = वेद (१४) कर्म लोक (स्थूल शरीर) (१५) नाम (१६) ॥

इन १६ कलाओं के बिना जब कोई शरीर नहीं बन सकता तब श्रीराम, कृष्ण आदि का न्यूनाधिक अंश और कलाओं से बनना कहां तक मान्य है अवतार वादी विचारें ॥

(४८) इन्द्रियेभ्यः पराह्यर्था अर्थेभ्यश्च परंमनः । मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान् परः ॥ महतः परमव्यक्त मव्यक्तात्पुरुषः परः । पुरुषान्न पर किञ्चित्सा काष्ठा सा परा गतिः ॥ कठ० व० ३ । १०, ११ ॥

(४९) अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः, अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्त भोगामजोऽन्यः ॥ श्वेताश्वेतर० ४ । ५ ॥

(५०) तेनान्तःकरणस्य । सांख्य० १ । १३ ॥

(५१) अध्यवसायो बुद्धिः ॥ सांख्य० २ । १४ ॥

(५२) तत्कार्य्यं धर्मादि । सांख्य० २ । १४ ॥

(५३) महदुपरागाद्विपरीतम् । सांख्य० २ । १५ ॥

*सत् में मुख्य धर्म ज्ञान प्रकाश और शान्ति आदि, रज में

रस, और गन्ध)†, तन्मात्राओं से क्रम से अर्थात् शब्द समूह से,वा ६० परमाणुओं से बने एक अणु* से आकाश, स्पर्श तन्मात्रा से तथा आकाश में से वायु के परमाणुओं को लेकर और फिर उनसे बनाये हुये दो अणुओं के एक द्वयणुक से वायु, रूपतन्मात्रा से तथा वायु में से लिये हुये वायु और अग्नि के परमाणुओं से बने हुये ३ द्वयणुक (त्रसरेणु से अग्नि, रस तन्मात्रा से तथा अग्नि से लिये हुये अग्नि और

(५४) सात्विकमेकादशकं प्रवर्त्तते वैकृतादहङ्करात् ।। सांख्य । ३ ।१८ ।।

(५५) शिष्टं पञ्चतन्मात्रञ्च तामसं तामसाहंकारात् प्रवर्त्तते चालकतया रजस्तुभयत्रान्वयीति शेषः ।।' इत्यत्र स्वामिहरिप्रसादे, व्याख्यातम् ।।

चञ्चलता और राग तथा तम में अंधकार, अज्ञान और आलस्य आदि न अतएव बुद्धि विवेचनशील अर्थात् शुभाशुभ विचार कर निश्चय कराने वाली होने से सात्विकी वा सत्व कहाती है। चित्त अतिचञ्चल और राग से स्मरण करने वाला होने से राजसी कहा गया है। मन भी चञ्चल और संकल्प विकल्प [अनिश्चय], आत्मिक होने से रजोगुणी— ज्ञानेन्द्रियों का नाम ही सात्विक है और कर्मेन्द्रियों को क्रिया विशिष्ट होने से राजसी कहना ठीक है, विषय तामसी हैं ।।

---

† बुद्धि आदि तन्मात्रापर्यन्त यह सबलिङ्ग शरीर के अङ्ग है।

*१ यह महर्षि दयानन्द सरस्वती जी का मत है ।।

२ स्वामी हरिप्रसाद जी वैशेषिक वैदिक वृत्ति पृष्ट ९० पर शब्द तन्मात्र को अणुक परिमाण और स्पर्शादि चार को द्वयणुक परिणाम लखते हैं ।।

जल के परमाणु से बने ४ द्विअणुक से जल; और गन्धतन्मात्रा तथा जल-सार, आग्नेय और पार्थिव परमाणुओं से बने हुये ५ वा ६ द्विअणुक अर्थात् २ त्रसरेणु से पृथिवी स्थूल भूत, आकाश आदि इस प्रकार रचे।

इन पञ्चमहाभूतों में अधिकांश आश्रय लेते हुये "प्राण" ५७-६१ "भोक्तृ" या पुरुष शक्ति सहित सूर्यादि ५६ प्रकाश वाले लोक; और आधिकांश पार्थिव आदि तत्त्वों में पृथिवी, चन्द्र आदि "रयि" ५७ "भोग्य" वा स्त्री शक्ति संयुक्त अंधेरे लोक।

[५६] देखो पृ० ५, प्र० २१

[५७] प्रजाकामो वै प्रजापतिः स तपोऽतप्यत स तपस्तप्त्वा मिथुनमुत्पादयते रयिञ्च प्राणञ्च। प्रश्न० १। ४॥

[५८] आदित्यो ह वै प्राणो रयिरेव चन्द्रमाः, रयिर्वा एतत्सर्वं यन्मूर्तञ्चामूर्तञ्च तस्मान्मूर्तिरेव रयिः॥ प्रश्न० १। ५॥

[५९] अथादित्य उदयन्यत्प्राचीं दिशं प्रविशति, तेन प्राच्यान्प्राणान् रश्मिषु सन्निधत्ते। यद्दक्षिणां यत्प्रतीचीं यदुदीचीं यदधो यदूर्ध्वं यदन्तरा दिशो यत्सर्वं प्रकाशयति, तेन सर्वान् प्राणान् रश्मिषु सन्निधत्ते॥ प्रश्न० १। ६॥

[६०] मासो वै प्रजापतिस्तस्य कृष्णपक्ष एव रयिः शुक्लः प्राणस्तस्मादेते ऋषयः शुक्ल इष्टिं कुर्वन्तीतर इतरस्मिन्॥ प्र० १। १२॥

[६१] अहोरात्रो वै प्रजापतिस्तस्याहरेव प्राणो रात्रिरेव रयिः॥ प्रश्न० १। १३॥

[६२] स प्राणमसृजत प्राणाच्छ्रद्धां खं वायुर्ज्योतिरापः पृथ्वीन्द्रियं मनः, अन्नमन्नाद्वीर्यं तपो मन्त्राः कर्म लोका लोकेषु नाम च॥ प्रश्न ॥ ६। ४॥

उपर्युक्त चन्द्रादि लोकों के रयि अंश वा स्त्रीशक्ति से प्राण ६२ वा पुरुषशक्ति का संयोग सूर्य किरण और वर्षा द्वारा करके पृथिवी आदि लोकों के बीजांश ६३-६४ से वृक्ष, ओषधि वनस्पति, लता, गुल्म, वीरुध, तृण आदि नाना भांति स्थावर।

और ओषधि से अन्न, अन्न पककर पृथिवी आदि लोकों के धरातल में पड़ने से वीर्य तथा आर्तव * (रज)

---

(६३) तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः आकाशाद्वायुः । वायोरग्निः अग्नेरापः अद्भ्यः पृथ्वीः । पृथिव्या ओषधयः । ओषधीभ्योऽन्नम् । अन्नाद्रेतः । रेतसः पुरुषः ॥ तै० ब्रह्म० व० । १ ॥

(६४) कारणगुणपूर्वकः कार्यगुणोदृष्टः ॥ वै० २ । १ । २४ ॥

---

* पृथिव्यामन्नाद्वीर्यं कथं सम्भवति तद्वक्ष्यामः । यथा मनुष्य शरीरे जायते । यदन्नं मनुष्योऽत्ति तन्नाडीषु पिष्टो भूत्वा (कोल्हू वत्) कतिपयेषु भागेषु विभज्यते, तेष्वेकं वीर्यमुच्यते, तथैव पृथिव्यां भवति केवलमन्तरमेतदेव अस्ति, शरीरे नाड्यः सन्ति तत्र नो नाड्यः । शरीरे मांस मज्जा, अस्थ्यादीनां भागाः पृथग् करणाय नाडीनामावश्यकता विद्यते, न केवलं वीर्यस्यैव; यथा परमात्मनः शक्त्या आकाशाद् वाय्वादीनि भूतानि संजायन्ते तथैवान्नाद्वीर्यम् । ततो यथाक्रमं मनुष्यशरीरं जायते ।

भाव यह है कि ईश्वर जैसे आकाश से वायु, अग्नि आदि बिना किसी साधन के बनाता है, अथवा शरीर में नसों द्वारा प्राण और रस के संयोग से अन्नादि को पीसकर मल, मूत्र हड्डी मज्जा, रुधिर आदि को कोल्हू में तेल और खली की भांति पृथक् २ कर देता है, ऐसे ही प्रकृति सृष्टि में अन्न को सूर्य-किरण जल और वायु के संयोग से पृथिवी में पीस कर मल आदि भाग पृथक् कर देता है और वीर्य अलग।

फिर उस प्राणांश वा प्राणसंयुक्त वीर्य और रयिसंयुक्त आर्तव परस्पर मिले हुये के साथ मुख्य पार्थिवादि विशेष निकृष्ट अंशों, तथा प्रत्येक स्थूल शरीर के लिये एक एक सूक्ष्म देह और एक एक जीवात्मा का संयोग होने से छोटे छोटे कीड़े ६५ मक्खी, मकड़ी, दंश, मच्छर, चींटी, आदि; बड़े बड़े सर्प मगर सिंह, हाथी, घोड़े६६, ऊँट, बकरी, भैंस, गो आदि; तथा नाना भाँति पक्षी चील, कौआ आदि।

तथा फिर उसी प्राण और रयि संयुक्त६७–७२

---

(६५) तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः संभृतं पृषदाज्यम्। पशूंस्तांश्चक्रे वायव्या नारण्या ग्राम्याश्च ये ॥ यजु० ३१। ६॥

(६६) तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादतः। गावो ह जज्ञिरे-तस्मात्तस्माज्जाता अजावयः॥ यजु० ३१। ८॥

(६७) पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम् उतामृतत्व स्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥ यजु० ३१। २॥

(६८) तस्मादग्निः समिधो यस्य सूर्यः सोमात् पर्जन्यः ओषधयः पृथिव्याम्। पुमान् रेतः सिञ्चति योषितायां बह्वीः प्रजाः पुरुषात् सम्प्रसूताः॥ मुण्डक० २७॥

अन्न (बीज) में से जैसे अङ्कुर निकलता है, वैसे ही वीर्य, और अङ्कुर से वृक्षवत् वीर्य से मनुष्यादि के शरीर को बनाता है।

उत्पन्न होना, बढ़ना, ठहर जाना, घटने लगना और नष्ट हो जाना आदि दशायें वृक्ष और मनुष्य की एक सी हैं क्योंकि दोनों प्रायः अन्न से बने हैं॥

आर्तव तथा जीवों सहित लिङ्ग शरीरों का मुख्यतया आग्नेयादि के अधिक उत्तमांशों से संयोग होने पर महर्षिब्रह्मा(पूर्ण विद्वान् चारों वेदों के वक्ता) आदि स्त्री पुरुष (देवी देव)* ।

पुनः उनही प्राणादि और अधिक मध्यम पार्थिवादि और न्यून आग्नेयादि अंशों से राक्षस (नितान्त अधर्मी मनुष्य नामधारी) ।

पुनः अधिक मध्यमआग्नेयांशों और पार्थिवादि न्यूनांशों से उत्तम विद्या वाले७२—७५ स्त्री पुरुषों के जोड़े ।

(६९ ऋग्वे० ४४ प्र० १२ ॥

(७०) त यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुष जातमग्रतः । तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये यजु० ३१ । ९ ॥

(७१) अद्भ्यः संभृतः पृथिव्यै रसाच्च विश्वकर्मणः समवर्तताग्रे तस्य त्वष्टा विदधद्रूपमेति तन्मर्त्यस्य देवत्वमाजानमग्रे ॥ यजु० ३१ । १७ ॥

(७२) प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरजायमानो बहुधा विजायते तस्य योनिं परिपश्यन्ति धीरास्तस्मिन् ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा ॥ यजु० ३१ । १९ ।

(७३ यत्परममवमं यच्च मध्यमं प्रजापतिः ससृजे विश्वरूपम् । कियता स्कम्भः प्रविवेश यत्र यन्न प्राविशत् कियतद्बभूव ॥ अथर्व १० । ४ । ८ ॥

(७४) देवाः पितरो मनुष्या गन्धर्वाप्सरसश्च ये उच्छिष्टाज्जज्ञिरे । सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः ॥ अथर्व० ११ । ४ । २७ ॥

(७५) हंसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत् नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतम्बृहत् ॥ कठ० ५ । २ ॥

---

*पार्थिव्यादि निकृष्टादि अंशों तथा आग्न्यादि के उत्तमादि अंशों

फिर वैसे ही अधिक पार्थिवादि उत्तमांशों से साधारण मनुष्य (स्त्री पुरुषों) के जोड़े ।

वैसे ही अधिक आग्नेयादि निकृष्टांशों से प्राण और रयि संयुक्त रजवीर्य का संयोग होने से वीच का कोटि के संघटित स्त्री पुरुषों के जोड़े, सृष्टि की अमैथुनी उत्पत्ति के समय समष्टि पृथिवी माता ७६ के अवकाश वा गर्भाशय में बन कर वर्तमान काल की मैथुनी उत्पत्ति में व्यष्टि माता के अवकाश वा गर्भाशय के समान ।

अधि=ठीक ठीक = उचित रीति से अर्थात् शुभाशुभ कर्मों के फलों और उनकी वासनाओं के अनुसार (जो महा प्रलय के समय भोगने को रह गये थे) शुभ अशुभ योनियां और उन योनियों में नाना प्रकार के उत्तम मध्यम और अधम शरीर और प्रत्येक शरीर में विविध सुख दुःख कर्मफल) सत्यन्याय और पूर्ण निष्पक्षता से) पाते हुये सृष्टि की आदि में, (और ऐसे ही आज कल पूर्व जन्म७७-७८ वा जन्मान्तरों के कर्म और वासनाओं

(७६) पृथिवी मातेरमा पृथ्वी माता हुयतामाग्निरग्नी भ्रात् स्वाहा ।। यजु० २ । १० ।।

(७७) असुनीते पुनरस्मासु चक्षुः पुनः प्राणमिह नो धेहि भोगम् । ज्योक् पश्येम सूर्य्यमुच्चरन्तमनुमते मृडया नः स्वस्ति ।। ऋ० ८ । १ । २३ । ६ ।।

सेउत्पत्ति प० भीमसेन भूतपूर्व आर्यसमाजी ने अपने ऐ० उ० के आर्य भा० अ० १ खं० २ । से ३ श्लोक में वर्णन की है ।

८०-८१ के अनुकूल), भिन्न भिन्न योनियां, शरीर और फल पाते हुये चराचर प्राणियों के सूक्ष्म तथा स्थूल शरीर।

और ऐसे ही अवान्तर प्रलयों में (जो एक एक मन्वन्तर के पीछे होती हैं) वायु, अग्नि, जलादि जिस महाभूत तक प्रलय हो जाती है वहीं से आगे की रचना। और ऐसे ही वे लोकलोकान्तर जिनकी सृष्टि (रचना) का समय महारात्रि वा महा (ब्रह्म) दिन में होता है।

अजायन = उत्पन्न = प्रकट हुई तथा हुये अर्थात् कारण प्रकृति कार्य अर्थात् जगत् रूप में लाई जाने से प्रकट हुई अथवा प्रकृति से लोक आदि बन कर प्रकट हुये, प्रकाशित हुये, दीख पड़े, जाने गये, तथा उत्पन्न, प्रकट, प्रकाशित होते और जाने जाते हैं, तथा आगे होंगे।

ततः = उसी अनन्त ज्ञान और अनन्त सामर्थ्य वाले कर्ता

(७८) पुन र्मनः पुनरायु र्म आगन् पुनः प्राणः पुनरात्मा म आगन् पुनश्चक्षुः पुनः श्रोत्रं म आगन्। वैश्वानरो अदब्धस्तनूपा अग्निर्नः पातु दुरितादवद्यात् ॥ यजु० ४।१५॥

(७९) आयो धर्माणि प्रथमः ससाद ततो वपूंषि कृणुषे पुरूणि। धास्युर्योनिं प्रथम आविवेश यो वाचमनुदितां चिकेत ॥ अथर्व० कां० ५। अनु० १। व० १। मं० २ ॥

(८०) देखो टिप्पणी पृष्ठ ४०।

(८१) योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः। स्थाणुमन्ये ऽनुसंयन्ति यथाकर्म यथाश्रुतम् ॥ कठ० ५।७॥

८२–८४ से ।

रात्रि = महारात्रि = घोर अंधकार का समय = सब जगत् का नाश वा लोप अर्थात् वह घोर (अत्यन्त) अन्धकार की दशा जो महाप्रलय के कारण होती है, जब कि यह दीखता हुआ कार्य जगत् विपरीत क्रम से अर्थात् जो जो पदार्थ जिस जिस पदार्थ से जिस जिस भांति बना था वह वह पदार्थ उस उस पदार्थ८५-८६ में उस भांति लय (उस उस स्वरूप का) होकर अर्थात् मनुष्यादि के स्थूल शरीर, अन्य सब जगत् के पदार्थ तथा सूर्य्यादि लोक पृथिवी पर्यन्त सब अपने अपने कारणों (जो जिससे बना था उस) में अर्थात् आकाश आदि ५ स्थूल भूतों में, ५ स्थूल भूत शब्द आदि ५ तन्मात्राओं में क्रम से ।

(८२) य एको जालवानीशत ईशनीभिः सर्वांल्लोकानीशत ईशनीभिः । य एवैक उद्भवे सम्भवे च य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥ श्वेता० ३ । १ ॥

(८३) एको हि रुद्रो न द्वितीयाय तस्थु य इमांल्लोकानीशत ईशनीभिः, प्रत्यङ् जनांस्तिष्ठति सञ्चुकोचान्तकाले संसृज्य विश्वा भुवनानि गोपा ॥ श्वेत० ३ । ४ ।

(८४) यो देवानाम् प्रभवश्चोद्भवश्च विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः हिरण्यगर्भं० ॥ श्वेता० ३ । ४ ॥

(८५) नाशः कारणलयः ॥ सांख्य० १ । १२१ ॥

(८६) गताः कलाः पञ्चदश प्रतिष्ठा देवाश्च सर्वे प्रतिदेवतासु । कर्माणि विज्ञानमयश्च आत्मा परेऽव्यये सर्व एकी भवन्ति ॥ मुण्डक० ६ ॥

५ तन्मात्रायें और १० इन्द्रियां और मन अहंकार में अहंकार बुद्धि या महत्तत्त्व में, महत्तत्त्व सत्, रज, तम, तीनों की साम्य दशा नामक प्रकृति में अत्यन्त सूक्ष्म परमाणु रूप हो कर नितान्त अन्धतम नामरूप व्यवहार-हीन (कार्यनाश वा अभाव सा) हो जाता है।

और ब्रह्म दिन की नाईं ४३२००००००० वर्ष ८७-८८ तक रहता है जिसमें से २१६००००००० वर्ष (अनुसीर्पिणी काल) प्रलय होने में और इतने ही वर्ष (उत्सर्पिणी काल) सृष्टि की रचना में लगते हैं। और मुक्तात्मा (ऐश्वर्य, धर्म, ज्ञान, ख्याति, वैराग्य और मोक्ष पर् पदार्थ युक्त होने से सामयिक और सापेक्ष भगवान् पद को प्राप्त कर) ब्रह्मलोक [ब्रह्म दर्शन] की आयु [समय] ३६००० कल्प तक स्वाभाविक गुणादि युक्त स्थूल एवं लिंग शरीर

[८७] शतं ते युतं हायनान् द्वे युगे त्रीणि चत्वारि कृण्म इन्द्राग्नी विश्वदेवास्तेऽनु मन्यन्तामहृणीयमाना: ॥ अथर्व० का० ८। व० १, सू० २, म० २१, अर्थात् दश सहस्र सैकड़ों [दस लाख] तक शून्य रख कर २, ३, ४ अर्थात् अंकानां वामतो गति के अनुकूल ४३२ जोड़ने से ४३२००००००० होते हैं।

[८८] युगानां सप्ततिः सैका मन्वन्तरमिहोच्यते। कृताब्द संख्या तस्यान्ते सन्धिः प्रोक्तो जलप्लवः, ससंध्यस्ते मनवः कल्पे ज्ञेयाश्चतुर्दश। कृतप्रमाणः कल्पादौ सन्धिः पञ्चदशः स्मृतः। इत्थं युगसहस्रेण भूत संहारकारकः कल्पोब्राह्ममहः प्रोक्तं शर्वरी तस्यतावती ॥ सूर्य्य सि० अ० १ श्लोक १८। १९। २०॥

रहित अर्थात् ८६ स्वच्छन्द) कारण रूपी संसार में भ्रमण आदि करते हुये अपने नित्य गुण, ज्ञान और प्रयत्न तथा स्वाभाविक ६०-६२ शुद्ध सामर्थ्य से ब्रह्म के साक्षात् सहवास के ज्ञान वा प्रीति से ब्रह्मानन्द का अनुभव करते रहते हैं, जैसा कि सृष्टि काल में भी।

७१ चतुर्युगियो (४३२०००० × ७१ वर्ष) का मन्वन्तर होता है और एक कृतयुग [१७२८००० वर्ष] के समान इसकी सन्धि अन्त में वर्णित की गई है, सन्धि सहित ऐसे ही १४ मन्वन्तर होते हैं, और फिर दूसरे कल्प के आरम्भ में भी इतनी ही १७२८००० वर्ष की सन्धि होती है सहस्र महायुग तक सृष्टि कर्ता परमात्मा सृष्टि को उपस्थित रखता है; और इसी का नाम ब्रह्म दिन अथवा कल्प है। और इतनी ही एक रात होती है ॥

[८९] देखो टू० ५८ प्र० २३

[९०] इच्छा द्वेषप्रयत्नसुखदुःखज्ञानान्यात्मनोलिङ्गम् ॥ न्याय० १। १। १० ॥

[९१] अभावं बादरिराह, ह्येवम्। भावं जैमिनिर्विकल्पामननात्। द्वादशाहवदुभयविधं बादरायणोऽतः ॥ वेदान्त० ४। ४। १०, ११, १२ ॥ अर्थात् मुक्ति में अज्ञान, अविद्या आदि दोषों का अभाव और ज्ञान आदि गुण और परमानन्द का भाव अथवा निज निकृष्ट अशुद्धि आदि का अभाव और परमात्मोत्कृष्ट धर्मों का भाव होता है, जैसा कि "तदा वि— द्वान् पुण्यपापे विधूय निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति ॥ मुण्डक० ३० ॥ अर्थात् पुरुष अविद्यादि क्लेशों से छूट ब्रह्म के समान भावों को पाता है। तथा "स सर्वज्ञः सर्वमेवा विवेशेति ॥ प्रश्न० ५। ११ "।

[९२] एष हि द्रष्टा स्प्रष्टा श्रोता घ्राता रसयिता मन्ता बोद्धा कर्त्ता विज्ञानात्मा पुरुषः स परेऽक्षर आत्मनि सं प्रतिष्ठते ॥ प्रश्न० ४। ९॥

मुक्ति समय के पीछे फिर९३-९६ जगत् में आते हैं*;
किन्तु कर्मफलबद्ध अज्ञानी जीवात्मा कारण शरीरस्थ जहां कि महाप्रलय के समय थे वहीं सुषुप्तिकी अवस्था में अगली सृष्टि तक पड़े रहते हैं ॥

अजायत = नियत हुई = रची गई = बनी अर्थात् घड़े वा घर को तोड़ वा ढाकर मिट्टी के कणओं के रूप पीसकर बनाने के समान कार्य जगत् को बिगाड़ कर कारण रूप बना देने से हुई, हुआ करती है तथा होगी ।

ततः = उस नित्य सर्वज्ञ और सर्व शक्तिमान् सृष्टि कर्त्ता से ।

समुद्रः – महान् समुद्र = अन्तरिक्ष या अवकाश अर्थात् पोला स्थान पृथिवी आदि लोकों में जल के लिये ।

अर्णवः = मेघसंघात = मेघ-मण्डल अर्थात् जलविभाग जैसे बादल (अभ्र) कुहरा, वाष्प, वर्फ, ओस आदि का समूह उत्पन्न हुआ ।

ओ३म् = उसी परमेश्वर के पूर्वोक्त ज्ञान और सामर्थ्य से ।

समुद्रात् = समुद्र से अर्थात् पृथिवीस्थ अन्तरिक्ष वा जलस्थान

[९३] कस्य नूनं कतमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम । को नो मह्या अदितये पुनर्दात् पितरं च दृशेयं मातरं च ॥
अग्नेर्वयं प्रथमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम । सनो मह्या अदितये पुनर्दात् पितरं च दृशेयं मातरं च ॥ ऋ० १ । २४ । १, २ ॥

[९४] इदानीमिव सर्वत्र नात्यान्तोच्छेदः ॥ सांख्य० १ । १५९ ॥

[९५] ते ब्रह्मलोके ह परान्तकाले परामृता त्परिमुच्यन्ति सर्वे ॥ मुण्डक० ५९॥

[९६] स यथा सोम्य ! वयांसि वासो वृक्षं सम्प्रतिष्ठन्ते एवं ह वै तत् सर्वं पर आत्मनि संप्रतिष्ठते प्रश्न० ४ ।७॥

पुनरावृत्ति के विषय में कोई सज्जन समझते हैं कि ऋषि

से । और

अर्णवात्=मेघ मण्डल के पीछे वा पृथक्

अधि=ठीक ठीक वैसे ही जैसे पहिले कल्प में ।

संवत्सरः=समय विभाग९७-९८ (टुकड़े) अर्थात् मन्वन्तर (वह समय जिसके पीछे बीच की वा अवान्तर प्रलय और सृष्टि होती है) सन्धि (२ मन्वन्तरों के बीच का समय] ४ युग तथा वर्ष, २ अयन (उत्तरायण और दक्षिणायन) ६ मास के ऋतुयें, मास, पक्ष, सप्ताह ।

अजायत=उत्पन्न =प्रकट वा प्रसिद्ध हुये ।

अहः=दिन

अहोरात्राणि=दिनरात, प्रहर, घड़ी, पल,क्षण, आदि ।

विदधत् = रचे = निश्चित, प्रकाशित वा प्रसिद्ध किये ।

विश्वस्य = उत्पन्न हुये भूतों को अर्थात् संसार (जिसकी नियम से सृष्टि और प्रलय होता है) को और सब

दयानन्द ने यह अपूर्व सिद्धान्त केवल "कस्य नूनं कतमस्यामृतानां" इस ऋग्वेद मन्त्र के आधार पर निकाला । सारा संसार और सर्व शास्त्र इससे विरुद्ध हैं । जो उक्त पुनरावृत्ति नहीं मानता धर्माधर्म का नाश करता है; और फिर नहीं आना चाहता, वह क्यों परोपकार करे ।

जो उक्त पुनरावृत्ति को मानता है वह जगदुपकार (उद्धार) करता है ताकि, जब वह जगत् में फिर आवे, उसे वैसी ही उत्तम दशा में (मुक्ति के साधन सम्पन्न) जगत् मिले और वह पुनः शीघ्र मुक्त हो जावे ।

यह मत सर्वथा अग्राह्य है किन्तु वेद में सदा से होने से यह सिद्धान्त न तो अपूर्व है नाही और सब शास्त्र विरुद्ध, प्रत्युत अविरुद्ध है ।

यह दूसरी बात है कि वर्त्तमान (वेदानभिज्ञ अवैदिक) संसार

प्राणियों को उनमें व्यापक होकर।
मितः = सहज स्वभाव में अर्थात् प्राकृतिक परमाणुओं तथा उनसे बने जगत् (और इस लिये हाथ पांवों

सब शास्त्रों में पौराणिक दृष्टि से पुनरावृत्ति न देख सके अथवा मुक्त होने पर क्रामिक जन्म मरण वाली आवृत्ति वा शास्त्रावृत्ति के निषेध वा न होने को उपर्युक्त मन चाहे अर्थों में लगाले।

लौकिक सुख दुःख के कारण शुभाशुभ कर्मों [धर्माधर्म] का नाश (सर्वथा त्याग) किये विना तो मुक्ति ही नहीं हो सकती, वह तो सब ही मुमुक्षु करते हैं। परन्तु धर्म नाम मुक्ति के साधन का त्याग केवल भोग देहाभिगामी ही करता है।

अब रहा परोपकार त्याग से अपुनरावृत्ति की सिद्धि का मानना यह उनके घर की बात है। किन्तु 'कुर्वन्नेवेहकर्माणि' इस वेद वचन एवं अन्य शास्त्र विरुद्ध होने से तत्ववित् लोक मान्य नहीं है।

अन्तिमांश भी ऐसा ही है क्योंकि उपकृत (सुधारा हुआ) जगदांश कितने सहस्र वर्षों में फिर ज्यों का त्यों हो जाता है।

फिर ३६००० महा प्रलयों के [जिन में से प्रत्येक में १४ अवान्तर प्रलयें, १ सहस्र चतुर्युगी और ३११०४०००००००००० वर्ष होते हैं) पीछे तक उस मुमुक्षु महात्मा कृत सुधार के ठहरने की कथा तो पाठक स्वयं विचारेंगे। और ऐसे विचार से सुधार करने वाले नाम धारी मुमुक्षु की बुद्धि की प्रशंसा के लिये तामसी शब्द निश्चित करेंगे।

२ किन ही का मुक्ति से लौटे जीवात्माओं के विषय में यह मत है कि-वे वृक्षों की योनि में आते हैं। और वृक्षों से शनैः २ क्रम से पशु, मनुष्य तथा देव योनि में पहुंच मुक्त हो जाते हैं॥

यह मत बहुत ही निराला है—इस विचार का यहां अवकाश नहीं है। परन्तु इतना कहा जा सकता है कि यह मत विकाश वाद

में सर्वव्यापक होने (सब ओर से उनके भीतर और बाहर रहने) से हाथ पांव वाले के समान शारीरिक आयास वा परिश्रम९७ के बिना (जो अपने से अलग या बाहर की वस्तु को कभी कभी बनाने वाले को होता है) क्रीड़ा मात्र से कर्मफल भुगाने तथा मोक्षसाधन के लिये।
वशी = अपने वश में तथा नियम में रखने वाले ने अर्थात् निराकार (निरवयव), सर्वज्ञ, सर्वव्यापक९७, स्वतन्त्र और परमात्मा सब प्रकृति तथा जीवात्माओं में भी व्यापक होकर उनका ब्रह्म (महा) रात्रि में धारण आदि करके, और ऐसे ही जगत् रचना करके, ब्रह्म दिन में जीवात्माओं और उनके शरीर के परमाणुओं में सदा पहले ही से अग्नि, वायु आदि के तुल्य भीतर ९८-९९ बाहर सब ओर से साक्षी रूप १०० से व्यापक रहते हुये उनका धारण, पोषण प्रकाश वायु जल अन्न आदि के द्वारा तथा उनको यथाकर्म फलप्रदान करते हुये, और अन्य केवल जड़ (प्राणरहित) जगत् के पदार्थों को भी, भोगों से १०० अलग,

(९७) देखो पृष्ठ ३३—प्रश्न १६

(९८) वायुर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रति रूपो बभूव। एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रति रूपो बहिश्च॥ कठ० ५।१०॥ (९९) देखो पृ० ३२ प्र० ७ ॥१०० देखो प० ३२ पृ० १४॥

मे मिलता है; किन्तु वैदिक सिद्धान्त से सर्वथा विरुद्ध है। कुतः बिना भोग के जड़ सम (स्थावर) योनि में जाना भोगातीत मुक्तों के लिये नितान्त अयुक्त और अप्रामाणिक है। और वृक्ष वा पशु केवल भोग योनि में रहते हुये बिना कर्म, प्रत्युत उत्तम कर्म के

*केवल साक्षी रूपसे व्यापकरहते हुये धारणकरते, नियम में चलाते तथा बीच की सृष्टि और प्रलय करते हुये तथा महासंहार = प्रलय वा नाश = लोप करतेअथवा बिगाड़ कर सब जगत् को उसी के कारण में मिला कर वा कारण

* क्योंकि ईश्वर उन सब परमाणुओं (जिनमें से कुछ के प्राणियों के सब शरीर तथा अन्य सब जगत् के भोग्य पदार्थ बनते हैं) में सदा पूर्व ही से व्यापक रहता है और इसलिये उनमें अल्पज्ञ प्राण धारी जीव की भांति नहीं फंसता, किन्तु अल्पज्ञ प्राणी भी प्रकृति का यथार्थ स्वरूप जान कर प्राकृत पदार्थों से विरक्त हो उनके फंदे से निकल जाता है।

फिर परमात्मा तो सदा सब को सब प्रकार से जानता है। वह इस भोग की इच्छा से जो अल्प स्वरूप अल्पज्ञ को होती है सर्वदा और सर्वथा अलग रहता है। यह भोग कल्पना केवल शरीरबद्ध परमाणु से छोटे जीव के संग ही हो सकती है क्योंकि अपने से पृथक वस्तु का ही भोग हो सकता है; अपने भीतर की वस्तु का नहीं। अल्पज्ञ भी अपने स्वरूप से पृथक् अपने शरीर कोनहीं, प्रत्युत शरीर से पृथक वस्तुओं को शरीर के निमित्त भोगता है।

दुष्ट तम से वरमतम योनि में पहुंचना फल स्वपने, नहीं नहीं स्वप्न में भी नहीं हो सकता॥

रूप करके अपने अधिकार १०१—१०४ में रखने वाले कर्त्ता, भर्त्ता तथा हर्त्ता सर्वेश्वर ने।

ओ३म्=ज्ञानपूर्वक अपने सामर्थ्य से सृष्टिकर्त्ता परमेश्वर।

सूर्य्याचन्द्रमसौ= (सूर्य्य+अ+चन्द्रमस्+औ *)।

सूर्य्य=प्राण, भण्डार, प्रकाश तथा उष्णताआदि का पुंज सूर्य्य लोक जो अमैथुनी सृष्टिमें पुरुषस्थानी, वायु का प्रेरक, पृथिवी आदि लोकों का प्रकाशक, आकर्षक १०५—१०७;

---

(१०१) समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नोऽनीशया शोचति मुह्यमानः। जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीशं...श्वेता० ४ । ७ ॥

(१०२) ऋतं पिबन्तौ सुकृतस्य लोके गुहां प्रविष्टौ परमे परार्द्धे छायातपौ ब्रह्मविदो वदन्ति पञ्चाग्नयो ये च त्रिणाचिकेताः ॥ कठ० ३ । १ ॥

(१०३) सर्वस्य प्रभुमीशानं सर्वस्य शरणं बृहत् ॥ श्वेता० ३ । १७ ॥

(१०४) अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः। स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तम् ॥ श्वेता० ३ । १९ ॥

(१०५) सत्येनोत्तभिता भूमिः सूर्येणोत्तभिता द्यौः ऋतेनादित्यास्तिष्ठन्ति दिवि सोमो अधिश्रितः ॥ अथर्व० १४ । १ । १ ॥

[१०६] सोमेनादित्या बलिनः सोमेन पृथिवी मही अथो नक्षत्राणामेषामुपस्थे सोम आहितः ॥ अथर्व० १४ । १ । २ ॥

[१०७] यदा ते हर्य्यता हरी वावृधाते दिवे दिवे। आदित्ते विश्वा भुवनानि येमिरे ऋ० ८ । १२ । २८ ॥

* सूर्य्य शब्द में "अ" "सुपांसुलुगित्य कारादेशः सर्वत्र" इस सूत्र से। और चन्द्रमस् शब्द में "औ" द्वितीया विभक्ति है।

जिसमें आग्नेयाधिक्य शरीर वाले नितान्त पापरहित, पूर्ण धार्मिक अति तेजस्वी प्राणी रहते हैं। और

चन्द्रमस् = चन्द्र १०६ लोक अर्थात् वह लोक जो पृथवी को अपने ने दर्पण के समान लाट ुए सूर्य्य के प्रकाश से प्रकाशित करने से शीतल प्रकाश वाला और रोग्या शक्ति वा स्त्री स्थानी रयि का पुञ्ज है।

धाता = विधाता स्रष्टा अर्थात् रचकर धारण करने वाले ने।

पूर्वम् = पहल अर्थात् इस सृष्टि से पहले तथा अनादिकाल से।

अकल्पयत् = कल्पना वा विचार किया अर्थात्पहली सृष्टि वा सृष्टियों को रचा, विचारा वा सत्य संकल्प किया, वैसे ही अब इस सृष्टिमें।

दिवम् = द्युलोक अर्थात् प्रकाश वाले सूर्य्य आदि लोकों को।

च = और।

पृथिवीम् = प्रकाशहीन पृथिवीचन्द्र आदि लोकों को।

च = और।

अन्तरिक्षम् = अवकाश१०८-१०६ = पोला स्थान अर्थात् सूर्य्य और पृथिवी के बीच का वह अवकाश वा रिक्त स्थान जिसमें सूक्ष्म भूतों वा अणुक परिणाम आकाश से अन्य अधिक स्थूल द्विअणुक, तिस्रेणुक आदि वस्तुयें न हों, तथा सूर्य और पृथिवी के बीच के लोकों को।

अथो = भी।

स्वः = मध्यस्थ (बीच के) लोक और लोकान्तर रचे॥

१०८) दिवञ्च पृथिवीञ्चान्तरिक्षम्॰ ऋ० १०।१९०।३

१०९ एतस्माज्जायते प्राणः मनः सर्वेन्द्रियाणि च खंवायुर्ज्योतिरापः पृथिवी विश्वस्य धारिणी॥ मुण्डक० २५॥

अघमर्षण मंत्रों के अन्वितार्थः

(ओ३म्) परमेश्वर (अभि) अनन्त, (इद्धात् तपसः) ज्ञान और सामर्थ्य स्वरूप से (सत्यम्) प्रकृति (च) प्रकृतिजन्य जगत् (च) और (ऋतम्) ईश्वरीय ज्ञान [वेदों के रूप में] (अध्यजायत) यथाविधि प्रकट हुए (ततः) उसी ज्ञानी और समर्थ से (समुद्रः अर्णवः) अन्तरिक्ष और मेघमंडल उत्पन्न हुये [और] (समुद्रात् अर्णवात्) समुद्र और अर्णव से (अधि) पृथक् = अन्य भाँति के (संवत्सरः), समय-भाग-विभाग (अजायत) नियत हुये [वही] (विश्वस्य मिषतोवशी) जगत् को सहज स्वभाव से वश में रखने वाला (अहोरात्राणि) समय-उपविभाग (विदधत्) रचता है अर्थात् ईश्वर सृष्टि-कर्त्ता है।

(ततः) उसी से (रात्रिः) महाप्रलय (अजायत) होती है अर्थात् वही ईश्वर हर्त्ता है।

(सूर्य्याचन्द्रमसौ) स्व एवं पर प्रकाशवाले, (दिवम्) साधारण प्रकाश वाले, (च) और (पृथिवीम्) अंधेरे लोकों को (अथो) और ऐसे ही (स्वः) अन्य लोकान्तरों को (धाता) धारण करने वाले ने (यथा) [वैसे ही] जैसे (पूर्वम्) पहले [किया] (अकल्पयत) रच कर धारण किया वा करता है अर्थात् वही जगदीश्वर सदा एक सा जगत् रच कर धर्ता भी है॥

त्रिरूपप्रार्थः

निराकार, सर्वव्यापक सर्वाधार, सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ, सत्य न्यायकारी, सृष्टिकर्त्ता, जगदीश्वर ने अपने नित्य अनन्त ज्ञान से संयोग (संयोग वियोग शक्तिहीन अर्थात् अपने आप किसी भी नियम से मिलने और पृथक् होने वा बनने बिगड़ने के लिये सर्वथा असमर्थ) प्राकृत परमाणुओं में (विचार मात्र से) देकर यह सब जगत् अनायास क्रीड़ा मात्र करते हुये अपनी स्वाभाविक नित्य रचना संहार आदि सामर्थ्य से सदा की भांति सब प्राणियों को महा प्रलयकाल के शेष कर्म-फल भुगाने तथा मुक्ति की इच्छा करने वालों के मोक्षसाधन के लिये अपनी महती दया से सूर्य्य से लेकर पृथिवी आपतु तृण पर्यन्त जगत् के सब पदार्थ रचे

और वही सब चराचर जगत् में व्यापक होकर स्वसाक्षी, सत्य न्याय और निष्पक्ष, समदृष्टि से यथाकर्म सब का फलदाता, भर्त्ता, और हर्त्ता है।

सूर्य्य आदि लोक, उत्तरायण, शुक्लपक्ष, दिन और प्राण का क्रम से चन्द्र आदि लोक, दक्षिणायण, कृष्णपक्ष, रात्रि, और रयि के संग संयोग होने से स्थूल वीर्य तथा आर्तव (रज) और उनसे पृथिवी आदि लोकों के निवासी मनुष्यआदि कीट पर्यन्त प्राणी मात्र के शरीर, अर्थात् सब

अमैथुनी (बिना माता पिता के) मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट आदि स्थावर पर्यन्त के जोड़े उत्पन्न हुए।

और स्त्री-पुरुषों में रज-वीर्य दोनों पदार्थ बीज अंकुर की भांति रहने से मैथुनी (माता पिता से) सृष्टि भी उसी की अत्यन्त विचित्र ज्ञानयुक्त सामर्थ्य से उत्पन्न होती है, अर्थात् जिस प्रकार अब आकाश आदि ५ स्थूल भूतों से बने हुये स्त्री-पुरुषों के सब स्थूल अंगों में से अंगों का सार-भूत वा सूक्ष्म अंग रज और वीर्य्य रूप से निकल कर एक अवकाश (रिक्त स्थान) वा गर्भस्थान (गर्भाशय) में एकत्रित होकर परमात्मा के सामर्थ्य वा ज्ञानयुक्त कर्तृत्व शक्ति से सन्तान का रूप धारण कर लेते हैं।

ऐसे ही पञ्च भूत (आकाश आदि) से बने हुये सूर्य्य और पृथिवी आदि लोकों के परमाणुओं के संग उन सब प्राणियों के स्थूल एवं लिङ्ग शरीरों के परमाणु महा प्रलय के समय से कारण रूप सूक्ष्म होकर लय हुये हुये बीजरूप से पृथिवी आदि लोकों के परमाणुओं में मिले जुले उपस्थित रहते हैं।

और फिर जीवों सहित सूक्ष्म देह पूर्वक प्राण वा रयि के संयोग से स्थूल देहों के सारांश वीर्य वा आर्तव रूप में वृक्ष के बीज के समान अन्न से (सृष्टि आरम्भ में) निकल कर, होने वाले स्थूल शरीरों का उपादान कारण बन, पृथिवी आदि लोकों के गर्भाशय रूपी अवकाश में उदर-अवकाश (माता के गर्भाशय) के समान परमेश्वर की रचनासामर्थ्य से फिर स्थूल शरीर पूर्ण युवा युवती स्त्री पुरुष रूप में प्रकट होते हैं।

चारों वेद सृष्टि की आदि में श्वास के समान महर्षियों

के हृदयों में सहज से प्रकाशित होकर सृष्टि के अन्त तक परम्परा से रहते है; और महा प्रलय काल में, स्थूल और सूक्ष्म (लिङ्ग) शरीरों के नष्ट होकर परमाणु रूप हो जाने से, अल्पज्ञ जीवों से वे नष्ट वा विस्मृत हो जाते; जैसा कि वर्त्तमान काल में भी प्रत्येक पण्डित पहले सूक्ष्म शरीर के रहते हुये भी (जो सृष्टि काल में एक स्थूल शरीर से दूसरे स्थूल में जाया करता है) अगले जन्म में फिर से पढ़ता है।

इस लिये अत्यन्त ज्ञानी, सर्वज्ञ, ईश्वर सृष्टि की आदि में सब से पहले उत्पन्न हुये किनही चार महर्षियों के पूर्ण शुद्ध अन्तःकरण (बुद्धि) में पूर्णज्ञान के भण्डार चार वेदों को मुक्त-पुनरावृत्त आदि पुरुषों के मोक्ष साधन की शिक्षा के लिये तथा अन्यों के भोग साधन और मोक्ष साधन के ज्ञान की प्राप्ति के लिये प्रकाशित करता है; क्योंकि उस समय अब की भांति शिक्षा देने के लिये माता, पिता आदि नहीं होते, और न वह ज्ञान जिसे वे स्वयं ही सीख लें और फिर औरों को सिखावें।

परमात्मा को सब भूत, भविष्यत्, वर्त्तमान् जगत् का कर्त्ता, धर्त्ता, भर्त्ता, हर्त्ता, सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, जीवों की अपेक्षा अन्तर्यामी अर्थात् हमारे कायिक वाचिक कर्मों के अतिरिक्त अन्तःकरणों के भावों वा मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, की वृत्तियों वा क्रियाओं का देखने वाला और निष्पक्ष सत्यन्याय से कर्मफल देने वाला निश्चित करके अर्थात् हृदय में सत्य को धारण करके ईश्वर को ऐसा बुद्धि-प्रत्यक्ष जान और मान, मन, वचन और देह से पाप

कर्म वा अधर्म कभी न करें, सदा वेद से धर्म के तत्त्व को यथार्थ रूप से जानकर जीवन पर्यन्त धर्म के आचरण करें।

इसी को अघमर्षण कहते हैं।

जगत् की रचना और वेद प्रदान से परमेश्वर का महत्तम-उपकार जान और सर्व धर्म कार्यों में सर्वदा जगत्-पिता को अपना निश्चित और सच्चा सहायक मान सदा पूर्ण आत्मविश्वास से कटिबद्ध होकर परोपकार, धर्म अर्थात् ईश्वर की आज्ञापालन में पूर्ण श्रद्धा और तप से तन मन अर्थात् यह नाशवान् सर्वस्व अर्पित या आत्म-समर्पण करदें॥

अथ
मनसा परिक्रमा-मन्त्राः

(अथ) अब (मनसा) मन से (परिक्रमा) ाने सब ओर घूमने तथा सब दिशाओं में सर्व भयों से ई - को अपना रक्षक चिन्तित करने के (मन्त्राः) मन्त्र* लिखे जाते हैं। अर्थात् वे मन्त्र जिनसे सब दिशाओं में सब प्रकार के शत्रुओं और दुःख आदि से ईश्वर को अपना रक्षक निश्चितकर, निर्दोष, तथा सत्यवादी हो, धर्म से परोपकार करते हुये निर्भय सब दिशाओं में विचर, अपना जीवन सफल करें।

* यह अर्थ ऊपर से समझो।

८-ओ३म् प्राची दिगग्नि रधिपति रसितो रक्षितादित्या इषवः। तेभ्यो नमो धिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु यो३ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयन् द्विष्मस् तं वो जम्भे दध्मः ॥

पदाः—ओम्। प्राची। दिग्। अग्निः। अधिपतिः। असितः। रक्षिता। आदित्याः। इषवः। तेभ्यः। नमः। अधिपतिभ्यः नमः। रक्षितृभ्यः। नमः। इषुभ्यः। नमः। एभ्यः। अस्तु। यः। अस्मान्। द्वेष्टि। यम्। वयम्। द्विष्मः। तम्। वः। जम्भे। दध्मः।

ओ३म्=सर्वव्यापक, सर्व शक्तिमान्, सर्वज्ञ, और सर्वरक्षक जगदीश्वर।

प्राची=मुंह के आगे की वा पूर्व की।

दिग्=दिशा (ओर) में।

अग्निः=सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, ज्ञानमय वा ज्ञानस्वरूप अर्थात् अत्यन्त ज्ञानी जिसमें अज्ञान के लेश (नाम) मात्र की सम्भावना नहीं हो सकती प्रत्युत उसकी उपासना से जीवों का अज्ञान बन्धन टूट जाता है।

अधिपतिः=सर्वोत्तम रक्षक स्वामी अर्थात् ज्ञानस्वरूप, अन्त॰

र्यामी और सर्वव्यापक होने से सब स्थानों में हमारे हृदयों में लज्जा, शंका, भय, हर्ष उत्साह, आदि उत्पन्न करके अपने ज्ञान के प्रकाश से तथा प्रकाश, वायु, सूर्य्य, चन्द्र आदि तथा अन्य इन मन्त्रों में वर्णित (बताये) पदार्थों के द्वारा वा वेद शास्त्रों के द्वारा हमारा सदा आचार्य्य*निर्भ्रम शिक्षक, एवं रक्षक तथा नियन्ता और कर्मफलदाता, और हमारे शरीरों का धर्त्ता, भर्त्ता तथा हर्त्ता, सदा अध्यक्ष वा अधिष्ठाता परमेश्वर।

असितः=(न सितः) (अप्रकाशितः)=अज्ञान वा अंधकार बन्धन से अर्थात् वर्त्तमान काल केसे नाना मिथ्या (ऋषियों के नाम पर गढ़े हुये) पुराण, तन्त्रग्रन्थ आदि, माया (मिथ्या) वादी नवीन वेदान्त ग्रन्थ, फलित ज्योतिष आदि, अथवा बाईविल, कुरान की अवैदिक शिक्षा, नास्तिक स्तोत्र (बने हुये, नाम के ईश्वर के बनाये), और अनेकों अवैदिक मत मतान्तरों के जाल से, तथा आर्ष ग्रन्थों में मिलाये मन माने वामी आदि मन्तव्यों से, वा सब प्रकार के भ्रमों और स्वार्थी, वेद विरोधी, अवैदिकों के फंदों वा आत्म * परमात्म-

---

* स एष पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात् यो० १ । २६ ॥

* १ योऽन्यथा सन्तमात्मानमन्यथा प्रतिपद्यते । किं तेनन कृत पापं चौरेणात्मापहारिणा ॥ महाभारत । अर्थात् जो आत्मा के विरुद्ध करता है वह आत्मचोर और आत्मघाती है ॥

२ न साम्परायः प्रतिभाति बालं प्रमाद्यन्तं वित्तमोहेन मूढम् अयं लोको नास्ति पर इति मानी पुनः पुनर्वशमापद्यते मे ॥ मे = मृत्योः अर्थात् जो मूर्ख धन के मोह में फंस कर परलोक को

घाती* मूर्ख शूद्र* वंचक गुरुओं की नास्तिक और सर्वनाशक केवल स्वार्थपरक शिक्षा से।

रक्षिता=रक्षा करने वाला अर्थात् उपर्युक्त अज्ञान, अन्धकार से मुक्तकर सुख वा आनन्द देने वाली धर्म की शिक्षा देनेवाला और दुःखदायी पापों का निषेध (रोक) करने वाला।

आदित्याः=सूर्य्य की किरणों वा वेदों द्वारा प्रकाशित किये अपने अनादि अनन्त ज्ञान से अर्थात् जिस प्रकार सूर्य की किरणें फैल कर सब अंधेरे से होने वाले शारीरिक कष्टों वा मानसिक भ्रमबन्धनों को दूर कर देती हैं ऐसे ही वेदों की ज्ञान रूपी किरणों के प्रसार [प्रचार] से सब भ्रम रूपी तथा झूठे वा कल्पित ग्रन्थों से फैलाया अंधकार रूपी अज्ञान दूर हो जाता है, अथवा जिस प्रकार सूरज की किरणें बिना रागद्वेष किसी को सुखाती, किसी को उगाती और बढ़ाती हैं, ऐसे ही ईश्वर के गुण न्याय दया आदि से पापियों को दुःख और पुण्य आत्माओं को निष्पक्ष सुख मिलता है।

अङ्गीकृत न कर, केवल यही लोक मानता है। वह फिर फिर मौत के मुख में पड़ता है॥ कठ० २। ६॥

*जो वेदशास्त्र, वैदिक कर्म, तथा गायत्री आदि परमात्मा-सम्बन्धी वेदमन्त्रों से लोकों को वंचित कर कल्पित मिथ्या मनुष्य सम्बन्धी मन्त्र बताते, मनुष्यों को वा मूर्त्ति (मूर्खों) पूजा का उपदेश देते हैं॥

* योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्रकुरुते श्रमम्। स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः। मनु० २। १६८॥

इषवः=बाणों=बाणधारियों वा बाण आदि नाना अस्त्र, शस्त्र धारियों के समान अर्थात् जिस प्रकार वीर लोग राजधर्म के शत्रुओं को जीत कर अपने राज्य, देश, वा धर्म की रक्षा करते हैं ऐसे ही ईश्वर अपने न्याय दया, नियामकता आदि शासक [राज के] गुणों से अर्थात् पापियों को दया से दण्ड देकर पाप करने से रोकता है; और धर्मात्माओं को (यदि आकस्मिक=अचानक पाप हो जावे) न्याय से दण्ड देता है; और पापियों के हाथ से दुःखी किये जाने से बचाता है।

तेभ्य=उनके लिये अर्थात् पूर्वादिक दिशाओं में अग्नि, [१] इन्द्र, [२] वरुण, [३] सोम [४] विष्णु; [५] और बृहस्पति [६] नामों से वर्णित किये हुये सब दिशाओं के स्वामी एक परमेश्वर के लिये।

नमः=सत्कार हो अर्थात् हम वेद-शास्त्रों को पढ़ ध्यानयोग से परमात्मा को सर्वव्यापक, ज्ञान वा प्रकाश स्वरूप [१] सर्वैश्वर्यदाता [२] सर्वोत्तम और एकला उपासनीय [३] सदानन्द, और शान्तिस्वरूप [४] सब का पालक, पोषक [५] और सब बड़ों (देवों, पुरुषोत्तमों, वा मुक्तों आदि) का स्वामी जानें और निश्चित करके मानें [६]। कभी मूढ़ बुद्धि से सर्वज्ञ, सर्व साक्षी१ ब्रह्म को अविद्या वा अज्ञान में फंसा२ हुआ जीव वा अविद्या रहते हुये भी अपने आपको भ्रम से ब्रह्म न मान बैठे (१) अथवा मोह से जन्म मरण के चक्र में आये हुये नरोत्तमों वा अन्य देवों (दिव्य गुण वाले मनुष्यों) को अपना उपास्य जान,

---

१—देखो पृ० ४४। प्रा० १४॥

२—तद्योगोऽप्य विवेकान्न समानत्वम्॥ सांख्य० १। ५५॥

मरने पर किसी एक वस्तु में कल्पित कर, अंधकार, इच्छा तृष्णा आदि में फंसा मान, परमात्मा, सर्व जगत् के स्वामी को उसके ऐश्वर्य्य से वञ्चित कर किसी एक थोड़े से स्थान वा पदार्थ का नाम मात्र स्वामी न समझें (२), और न उपास्य पद से गिरा कर जड़ चेतन अथवा साकार वा निराकार दूसरे परमात्मा का उपासक (३) ठहरावें, तथा अशान्त, आनन्दहीन मोह से रोने वाला (४) वा काम क्रोध से प्राणियों का वध करने वाला अथवा संसारी क्षुधा तृष्णा सुख दुःख आदि द्वन्द्व दोषों से दुष्ट (५) एवं माता, पिता गुरु, आचार्यादि पूर्वजों से छोटा आदि (६) न कहें, प्रत्युत ऐसी सर्व कथाओं को जो ब्रह्म को जीव अथवा जीवों को अज्ञानी ब्रह्म बनाती वा बताती हों मिथ्या जान सर्वथा त्याग दें।

अधिपतिभ्यः = सर्वथा रक्षक और पोषक अग्नि आदि ६ स्वामियों के लिये।

नमः = नमस्कार (आदर) हो अर्थात् वेद शास्त्रों तथा उनकी किन्हीं व्याख्याओं को पढ़ कर भौतिक तथा दैविक विज्ञान को पूर्णतया दृढ़ अभ्यास वा परिश्रम से जान (१), कला कौशल और शिल्प के द्वारा हम सर्वथा ऐश्वर्यवान् बन, (२) अत्यन्त भजनीय परमपिता के सच्चे उपासक एवं परोपकार से सब जगत् के पूज्य हों (३), वा सच्चे विश्वासपात्र हितैषी बन कर अविद्या आदि क्लेशों से छूट, काम क्रोध आदि एवं देश वा धर्मशत्रुओं को जीत, सदा शान्त आनन्द में रहें (४) और अन्न वस्त्र आदि से निर्धन, अपाहज आदि का पोषण (५) धन, बल वा विद्या

से अनाथ, विधवा आदि की रक्षा, बालक, बालिकाओं आदि को विद्या दान, पापियों को दण्ड और धर्मात्माओं को यथायोग्य, उचित और आवश्यक धनादि समर्पण कर सब जगत् के यथापूर्व शिक्षक, और वेदवाणी के रक्षक होते हुये सब भूमण्डल का ऐश्वर्य . ोगें [६]।

तथा यथार्थ आध्यात्मिक विज्ञान और योगसमाधि द्वारा ऐश्वर्य धर्म, ज्ञान, यश, वैराग्य और मोक्ष पद को प्राप्त हो स्वेच्छा से सब जगत् में विचरते ब्रह्मदर्शन से सदा ब्रह्मानन्द को पावें।

रक्षितृभ्यः=रक्षा करने वाले आदित्य [१] पितर [२] अन्न (३ अशनि [४] वीरुध, [५] और वर्षा ६] के लिये।
नमः=हम वन्दना करें=उनके अनुकारी वा अनुसारी होवें, अर्थात् हम वेदांग सहित वेद, उपवेद, दर्शन उपनिषदा तथा पदार्थ विद्या आदि को पढ़ें वेदविरुद्ध ग्रन्थों को सर्वथा छोड़ें, और प्रकाशवान् सूर्य्य की नाईं धर्मात्मा बन कर धर्म का प्रकाश करें [१]।

तथा शीतल स्वभाव शान्त आनन्दी संन्यासियों वा वृद्ध ज्ञानियों से ज्ञान प्राप्त कर, सब कुमार्गी, स्वार्थी, पाखंडी आदि नास्तिक मूर्खों वा धूर्तों से बचें और बचावें [२]। तथा बड़े बड़े अजगर आदि प्राणघातकों से वा अन्य मनुष्य जाति के शत्रु दुराचारी राक्षसों, देश और धर्म के

नाशक दुष्टों से पार्थिव ओषधियों के द्वारा वा शान्ति और तितिक्षा (सहन) आदि के सद्योगाभ्यास से प्राप्त किये आत्मिक बल से आप को बचावें अथवा उनको प्रभावित करके वश में करें (३)।

बिजुली अर्थात् दैविक अग्नि के द्वारा तथा स्वयं तीव्र बुद्धि से वा ध्यान योग द्वारा बनाई अति तीक्ष्ण बुद्धि से स्वयं सब वैद्यक शास्त्रों को पढ़ अपने आप से उत्पन्न होने वाले महामारी, विशूचिका, कफसन्नी आदि रोगों से बचें और अन्यों को बचावें अथवा सुतीक्ष्ण बुद्धि अनुभवी वैद्यों के द्वारा ऐसे भयानक रोगों से आपको तथा अन्यों को दुःखानुभव एवं शरीर नाश से बचावें (४)।

उत्तम वनस्पति तथा जड़ी बूटियों के ज्ञाता वैद्यों की ओषधि उपयुक्त या उपभुक्त कर. विषखपड़े आदि प्राण घातक जीवों अथवा, ईश्वर प्रदत्त सुमतिवा सुनीति द्वारा विचित्र तिश्च जंगली वा बाहरी लुटेरे शत्रुओं से अपने शरीर आदि को बचावें (५)।

और वर्षा में उत्पन्न हुई नाना बूटियों तथा वर्षा के जल से कोढ़ आदि रोगों को दूर करें, वा शारीरिक कोढ़ सम भीतरी गृह शत्रुओं को शान्त प्रिय व्यवहार आदि के द्वारा मित्र बनावें (६)।

इषुभ्यः = बाणों = बाण आदि सब प्रकार के अस्त्र शस्त्रों वा अस्त्र शस्त्र विद्या के ज्ञाता शिक्षकों तथा शस्त्रधारी धीरों वा राजपुरुषों तथा देश और धर्म के रक्षकों के लिये तथा ईश्वर के गुणों के लिये।

नमः=हमारा नमस्कार हो, अर्थात् हमसब भूमण्डल वासी ईश्वर आज्ञा से बाण आदि की रक्षा करें, शस्त्रविद्या को सीखें तथा सिखावें, तथा शस्त्रधारी स्वदेश और स्वधर्मरक्षक राजपुरुषों का आदर सत्कार करें, अथवा हम ऐसे दयालु, न्यायकारी, धर्मात्मा, दृढ़ सत्यव्रत, आत्मविश्वासी, प्रण (वचन) को प्राण का अटल साथी जानने वाले बनें कि हमारी धार्मिक कर्मपरायणता वा आत्मिक बल युक्त सच्चे धर्मोपदेशों के प्रभाव से विधर्मी स्वधर्मी (सुधर्मी) और विदेशी वा विदेश, स्वदेशी वा स्वदेश से अधिक न बन जावें, तो न्यून भी न रहें।

एभ्यः=इनके लिये अर्थात् ज्ञान, प्रकाश। १। ऐश्वर्य। २। प्रतिष्ठा। ३। शान्ति, आनन्द। ४। सर्वपोषण। ५। वेदज्ञान अधिपतित्त्व, रक्षा,। ६। दया, न्याय आदि के लिये फिर।

अस्तु=हो=आदर हो अर्थात् पूर्वोक्त विधि से हम अवश्यमेव परमात्मा की आज्ञा पालन रूप नमस्कार कर के निज अभीष्ट को प्राप्त करें।

यः=जो प्राणी।

अस्मान्=हमसे।

द्वेष्टि=द्वेष रखता वा वैर करता है, अर्थात् अपने स्वार्थान्ध दुराचार से हमारे धर्मोपदशों एवं शिक्षाप्रद ताड़नाओं को न सुन वा न सहकर शत्रु बना है।

यम्=जिससे।

वयम् = हम = उपदेशक आदि = ईश्वर के सच्चे भक्त ।

द्विष्मः - वैर वा घृणा करते हैं अर्थात् अपनी आत्मिक निर्बलता से उन अज्ञानियों से पहुंचाये कष्टों को सहर्ष तप रूप न सहकर उनके लिये अशुभ चिन्तन आदि करते हैं वा उनको उपदेश नहीं करते ।

तम् = उस निज पर भावकृत वैर वा घृणा को ।

वः = उनके अर्थात् अग्नि आदि नाम वाले सब दिशाओं के स्वामी बृहस्पति जगदीश्वर के ।

जम्भे = हवन-कुण्ड रूपी वश वा अधिकार में अर्थात् हवन कुण्ड की भांति नष्ट करने और शुभफल देने वाली शक्ति के लिये ।

दध्मः = त्यागते = छोड़ते वा देते हैं अर्थात् सचाई से द्वेष को सर्वेश्वर के न्याय, दया, पालन, पोषण आदि गुणों के हाथ में देते हैं; अब से पूर्ण अहिंसक एवं निर्दोष हो निर्भयता से प्रेम पूर्वक संसार में विचर कर, परोपकार करें ।

भाव यह है कि न हम किसी प्राणी से मतमतान्तर आदि के कारण घृणा वा द्वेष करें; और न हमसे कोई घृणा वा वैर करे ॥

९-ओ३म् दक्षिणा दिगिन्द्रो ऽधिपतिस्तिरश्चिराजी रक्षिता पितर इषवः । तेभ्यो नमो ऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम

इषु॑भ्यो॒ नम॑ एभ्यो अस्तु॒यो॒३॒ऽस्मान् द्वेष्टि॒
यं वयं॒ द्वि॒ष्मस्तं वो॒ जम्भे॑ दध्मः॥

पदाः ओ३म् । दक्षिणा । दिग् । इन्द्रः । अधिपतिः ।
तिरश्चि । राजी । रक्षिता । पितरः । इषवः । तेभ्यः ।
नमः । अधिपतिभ्यः । नमः । रक्षितृभ्यः । नमः ।
इषुभ्यः । नमः एभ्यः । अस्तु । यः । अस्मान् । द्वेष्टि ।
यम् । वयम् । द्विष्मः । तम् । वः । जम्भे । दध्मः ॥

पदार्थः-

दक्षिणादिग्=दाहिनी ओर वा दक्षिण में ।

इन्द्रः=सर्वेश्वर=ऐश्वर्यदाता अर्थात् धर्मात्मा पुरुषार्थी प्राणियों को राज्य, सुख, पृथिवी, गज, अश्व, गाय भैंस आदि पशु: स्त्री पुरुष, पुत्र, पौत्र, सेवक मित्र आदि मनुष्य; पुंल्लिंग और स्त्रीलिंग भी सब का; तथा सुवर्ण, मुक्ता, मणि, वज्र आदि धनों वा नाना विद्याओं का देने वाला ।

अधिपतिः=सब से उत्तम रक्षक स्वामी ।

तिरश्चि=टेढ़े चलने वाले अर्थात् सर्प विच्छू आदि तथा सन्मार्ग [वैदिक धर्म*] विरोधी [जैसे आज कल] वाम मार्गी, पौराणिक, किरानी कुरानी, जैन, बौद्ध, राधास्वामी आदि अनेक भ्रान्त मतमतान्तरों पर चलने वालों के ।

राजी=पंक्ति= [पांति] तथा समूह, समुदाय आदि से ।

रक्षिता=बचाने वाला अर्थात् निर्विष करने वाला एवं वेद-

*जो धर्म अर्थ काम और मोक्षदाता है ॥

ज्ञानोत्पन्न युक्ति, प्रमाण और सुतर्कों से विरोधी मतों का खण्डन करके स्वशिक्षा [वैदिक धर्म] का मण्डन कराने वाला।

पितरः=चन्द्र लोक वा चन्द्रमा के गुण वाले विद्वान् अर्थात् चन्द्रमा की शीतल किरणों के तुल्य शान्त और क्षोभहीन सत्य और पथ्य [लाभदायक] उपदेश देने वाले उपदेशक, पूर्ण ज्ञानी वृद्ध, धार्मिक, परोपकारी, अनुभवी विद्वान् माता पिता आदि तथा अन्य गृहस्थ, वनस्थ वा संन्यासियों के द्वारा।

इषवः आदि का अर्थ पूर्ववत्॥

१०-ओ३म् प्रतीची दिग्वरुणोऽधिपतिः पृदाकू रक्षितान्नमिषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। यो३ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः॥

पदाः—ओ३म्। प्रतीची। दिग्। वरुणः। अधिपतिः। पृदाकू। रक्षिता। अन्नम्। इषवः। तेभ्यः। नमः। अधिपतिभ्यः। नमः, रक्षितृभ्यः। नमः। इषुभ्यः नमः एभ्यः। अस्तु। यः। अस्मान्। द्वेष्टि। यम्ः। वयम्। द्विष्मः। तं। वः। जम्भो। दध्मः।

पदार्थाः—

प्रतीचीदिग्=पीठ पीछे वा पश्चिम दिशा में।

वरुणः=सर्व व्यापक सर्वोत्तम भजनीय सच्चिदानन्द, अर्थात् अविनाशी, अपरिणामी, एक रस रहने वाला चेतन

अत्यन्त ज्ञानी और अत्यन्त आनन्दी परमेश्वर; क्योंकि जीवात्मा में, सुख दुःख युक्त होने से, सदानन्द नहीं है; वह केवल चेतन और अल्पज्ञानी और मुक्ति और बन्धन के परिणामों से होते सदा रहने वाला "सत् चित्" है और प्रकृति कार्य और कारण रूप परिणामों सहित सदा रहने वाली जड़ वा ज्ञानहीन केवल "सत्" है।

जड़ प्रकृति की उपासना [ध्यान] से जड़त्व३ [निर्बलता] और बन्धन होता है। जीवों [अवतारों आदि] के ध्यान से अज्ञान की वृद्धि १—३ और आनन्द की अप्राप्ति, प्रत्युत आनन्द और समय की हानि के अतिरिक्त नास्तिकता आदि दोष भी आते हैं।

अधिपतिः = पूर्वोक्त स्वामी।

पृदाकू = विषधारी, प्राणघातक वा विरोधी बड़े बड़े शरीर धारी अर्थात् अजगर, भेड़िया, सिंह, मगर आदि प्राणियों से वा देश और धर्म के विरोधी राजा, महाराजाओं से।

१—अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते। ततो भूय इव ते तमो य उ सम्भूत्यां रताः॥ ईश० ९॥

२—यत्तु कृत्स्नवदेकस्मिन् कार्ये सक्तमहैतुकम्। अतत्त्वार्थवदल्पं च तत्तामसमुदाहृतम्॥ गीता० १८। २२॥

३—एतदमृतमभयं तत्प्रविश्य देवा अमृता अभया अभवन्, तादृगुपास्ते भवन्ति यादृश देवं भजन्ते॥ छां० १। ४। ४॥

अर्थात् यो यादृग् देवता उपास्ते; स तादृग् स्वयमेव भवति॥ छांदोग्य भाष्य॥

रक्षिता=रक्षा करने वाला वा अपनी रक्षा के योग्य में बनाने वाला।

अन्नम्=पृथिवी से उत्पन्न हुई ओषधियों आदि के द्वारा अर्थात् घातक जीवों से बचने के लिये ओषधियां, वा डराने को अस्त्र आदि बतला कर, और राजनियम तथा धर्मनाशक मनुष्य वा राक्षसों से बचने को अपने मनोहर उपदेशों को सिखा कर तथा शारीरिक, सामाजिक और आत्मिक उन्नति की शिक्षा देकर। शेष पूर्ववत्॥

११ओ३म् उदीची दिक् सोमोऽधिपतिः स्वजो रक्षिताऽशनिरिषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु योऽ३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः॥

पदा:—ओ३म्। उदीची। दिक्। सोमः। अधिपतिः। स्वजः। रक्षिता। अशनिः। इषवः। तेभ्यः। नमः। अधिपतिभ्यः। नमः। रक्षितृभ्यः। नमः। इषुभ्यः। नमः। एभ्यः। अस्तु। यः। अस्मान्। द्वेष्टि। यम्। वयम्। द्विष्मः। तम्। वः। जम्भे। दध्मः॥

पदार्थाः—

उदीचीदिक=बाईं ओर वा उत्तर में।

सोमः=शान्त अमृत स्वरूप परमेश्वर अर्थात् सर्व ऐश्वर्य वाला जगदुत्पादक अपने उपासकों को मोक्षपद देक

शान्त ऐश्वर्य—वा परमानन्द अनुभव कराने वाला नित्य मुक्त सर्वेश्वर।

अधिपतिः = पूर्ववत् स्वामी।

स्वजः स्वयं * उत्पन्न होने वालों से अर्थात् मच्छर दंश [डांस] आदि कीड़ों से तथा महामारी, विशूचिका, कफसन्नी आदि रोगों एवं रोग उत्पादक पृथिवी, जल, अग्नि, एवं वायुओं से।

रक्षिता = आरोग्य रखने वा करने वाला अर्थात इनका नाश करके हमको बचाने वाला अथवा बचाने के उपाय बताने वाला,

अशनिः = बिजली तथा बिजली के समान वैद्यों द्वारा अर्थात् दैविक अग्नि से तथा अतितीव्र बुद्धि वाले वैद्यों वा उन से प्राप्त की हुई ओषधियों के द्वारा, शेष पूर्ववत्॥

ओ३म् ध्रुवा दिग् विष्णु रधिपतिः कल्माषग्रीवो रक्षिता वीरुध इषवः। तेभ्यो नमो धिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु यो३ ऽस्मान द्वेष्टि यं वयन् द्विष्मस् तं वो जम्भे दध्मः॥

पदाः—ओ३म्। ध्रुवा। दिग्। विष्णुः। अधिपतिः। कल्माष। ग्रीवः। रक्षिता। वीरुध। इषवः। तेभ्यः। नमः। अधिपतिभ्यः। नमः। रक्षितृभ्यः। नमः। इषुभ्यः। नमः।

* बिना, माता पिता के।

एभ्यः । अस्तु । यः । अस्मान् द्वेष्टि । यम् । वयम् द्विष्मः । तम् । वः । जम्भे । दध्मः ॥

पदार्थाः—

ध्रुवादिग् = नीचे की दिशा में ।

विष्णुः = सर्वव्यापक और सर्वपोषक १ परमेश्वर अर्थात् जीवन-मूल पदार्थ, प्रकाश, वायु, अग्नि जल, अन्न, प्राण, तथा अन्य विविध वस्तुयें रच कर सबको निष्पक्ष अत्यन्त हितैषी२ पितावत् प्राप्त कराने वाला सब का परम पिता परमेश्वर२ ।

अधिपतिः = यथापूर्व स्वामी ।

कल्माष = हरे, अनेक रंग के वा विचित्र नीति के ।

ग्रीवः = गले वाले विषखपड़े आदि शरीर नाशक प्राणियों से, अथवा जंगली डाकुओं से ।

रक्षिता = बचाने वाला,

वीरुधः = बहुत लम्बी विषनाशक बेलों तथा दूरदर्शी मति वा नीति के द्वारा । शेष पूर्ववत् ।*

१—देखो पृष्ठ ५२ प्र० २ ॥

२—स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव । सचस्वा नः स्वस्तये ॥ ऋ॥ मं०१ सू०१ मं०९ ॥

* शारीरिक परिक्रमा से किये हुये पापों का नाश मानना मूर्खता एवं वाममार्ग है ।

मनसा परिक्रमा से सब ठौर ईश्वर को शुभ कर्मों में अपना रक्षक मानने का उपदेश है ।

१३ ओ३म् ऊर्ध्वा दिग् बृह॒स्पति॒रधि॑पतिः श्वि॒त्रो र॑क्षिता व॒र्षमिष॑वः तेभ्यो॒ नमो॑ऽधिपतिभ्यो॒ नमो॑ रक्षि॒तृभ्यो॒ नम॒ इषु॑भ्यो॒ नम॑ एभ्यो अस्तु यो॒३॒ऽस्मान् द्वेष्टि॒ यं व॒यं द्वि॒ष्मस्तं वो॒ जम्भे॑ दध्मः॥

पदाः—ओ३म् । ऊर्ध्वा । दिग् । बृहस्पतिः । अधिपतिः । श्वित्रः । रक्षिता । वर्षम् । इषवः । तेभ्यः । नमः । अधिपतिभ्यः । नमः । रक्षितृभ्यः । नमः । इषुभ्यः । नमः । एभ्यः । अस्तु । यः । अस्मान् । द्वेष्टि । यम् । वयम् । द्विष्मः । तम् । वः । जम्भे । दध्मः ॥

पदार्थाः—

ऊर्ध्वादिग् = ऊपर वा ऊपर की दिशा में।

बृहस्पति = बड़े बड़े ब्रह्माण्डों, सबसे बड़े नरोत्तमों वा मुक्तों का स्वामी अर्थात् पूर्वोक्त षट् ऐश्वर्य आदि पदार्थ प्राप्त सापेक्ष ईश्वरों वा भगवानों का (यथा जीवन्मुक्त जनक, राम, कृष्ण, दयानन्द आदि) तथा वेदवाणी का स्वामी, वेदाचार्य्य परमेश्वर।

अधिपतिः = पूर्ववत् सर्वोत्तम स्वामी।

श्वित्रः = श्वेत कुष्ठ, कोढ़ (आदि) विविध रोगों से, वा देह कुष्ठसम व्यक्ति वा समष्टि (सामाजिक) गृह-विरोधियों आदि में।

रक्षिता = अलग = स्वस्थ रखने वा करने वाला वा एकता करा देने वाला ।

वर्षम् = वर्षा के जल अथवा निस्स्वार्थ मित्र व्यवहार द्वारा। शेष, का, पूर्ववत्, अर्थ समझो। अथर्व कां० ३ अ० ६ व २७ मं० १, २, ३, ४, ५, ६।

(सम्पूर्ण मनसा परिक्रमा मन्त्रों का भाव)

हे सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, सर्वैश्वर्यदाता श्रेष्ठतम, शान्तिस्वरूप, सर्वपोषक, सर्वपते ! हमारे आगे, पीछे, दाहिनी, बाईं, ऊपर और नीचे की ओरों में व्यापक अन्तर्यामिन् परमात्मन् ! हे अनाथों के नाथ ! हे परमैश्वर्यवन् ! हे पितः ! हे प्रभो ! तू स्वतन्त्र राजा है, तू हमारी अज्ञान अन्धकार, कुमार्गियों, भुजंगों आदि जन्तुओं वा स्थूल पशुओं, आकस्मिक उत्पन्न दुष्ट प्राणियों तथा रोगों, अन्य शरीरनाशक प्राणियों तथा कुष्ठ आदि रोगों से क्रमशः, वेद और सूर्य, शान्त विद्वानों, ओषधियों आदि, बिजुली तथा उसके समान सुतीक्ष्ण वैद्यों आदि, वनस्पतियों तथा वर्षा आदि के द्वारा, एवं प्राणों की रक्षा अन्न, जल, वायु, प्रकाश आदि के द्वारा करता है। हम सब मनुष्य अपनी जीवनरक्षा के लिये आप को वारंवार नमस्कार करते हैं। आपकी भक्ति करते हैं, आप के शासन के आगे शिर झुकाते हैं। जो हम से द्वेष करता है, वा जिस से हम द्वेष करते हैं। उस द्वेषी अथवा द्वेष को हम आप के न्याय रूप सामर्थ्य पर छोड़ते हैं। हमारा कल्याण हो।

अथोपस्थान-मन्त्राः

(अथ) यहां से (उप) समीप वा अधिक (स्थान ष्ठा) चित्तवृत्तियों से ठहरना, होना अर्थात् धारणा करना।

उपस्थानमन्त्राः = वे मन्त्र जिनके अर्थ विचार से ईश्वर का विशेष ज्ञान करते हुये चित्तवृत्तियां केवल और केवल ईश्वर की ओर ही लगाई जावें।

१४—ओ३म् उद् वयन् तमसस् परि स्वः पश्यन्त उत्तरम्। देवन् देवत्रा सूर्य मगन्म ज्योति रुत्तमम् ॥ यजुः० ३५। १४ ॥ ऋ० १। ५० । १० ॥

पदाः = ओ३म्। उत्। वयम्। तमसः। परि। स्वः। पश्यन्तः। उत्तरम्। देवम्। देवत्रा। सूर्यम्। अगन्म। ज्योतिः। उत्तमम्॥

पदार्थाः—

उत् = उत्तमता से = अनन्य भक्ति से अर्थात् उत्कृष्ट श्रद्धा,

पूर्णभक्ति और उत्कट प्रेम से अर्थात् काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि से छूट वा इनको जीत, सब आश्रमों के कार्य १ कर्म, धर्म से करते हुये पूर्णज्ञान और सत्यता से।

वयम्= हम उपासक ध्यानी वा योगी मुमुक्षु जन।

तमसः=अन्धकार वा अज्ञान से परि=अलग=दूर=रहित	कदापि किसी काल में भी अत्यन्त ज्ञान और प्रकाश वाला होने से अज्ञान, (माया) की छाया में न आने वाला परमात्मा।

स्वः=स्वयम्प्रकाश २ को अर्थात् सूर्य के समान प्रत्युत उस से भी अत्यन्त ३ अधिक प्रकाश वाले [उस] परब्रह्म को।

पश्यन्तः=ज्ञान दृष्टि वा आत्मदृष्टि से देखते हुये अर्थात् जगत् की अद्भुत रचना को देख और उस सब को एक अटल नियम और न्याय में चलते विचार कर, परमात्म-सत्ता को

---

(१) श्रुतिस्मृत्युदितं सम्यङ् निबद्धं स्वेषु कर्मसु।
धर्ममूलं निषेवेत सदाचारमतन्द्रितः॥ मनु॥

(२) देखो पृ० ३० प्र० १॥

(३) एक एवाग्निर्बहुधा समिद्ध एकः सूर्यो विश्वमनु प्रभूतः।
एकैवोषाः सर्वमिदं विभात्येकं वा इदम् वि बभूव सर्वम्॥
ऋ० ८। ५८। २॥

निश्चय से जानते और मानते हुये; वा असंप्रज्ञात योग समय प्राकृत शरीरों से पृथक् विना अन्तःकरण, साक्षात् वा स्वयं देखते हुये।

उत्तरम् = जो हमको दुःखसागर से पार उतारने वाला४—५ है और आप सब दुःख ६ ७ आदि से पार अर्थात् जो नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव सर्वज्ञ परमेश्वर सांसारिक जन्म मरण वा अविद्या आदि पाँच क्लेशों से सदा अलग प्रत्युत अपने उपासकों को भी इन सबसे मुक्त करनेवाला, महाप्रलय के पीछे सदा एकसा वर्तमान, हमें (आत्माओं को) संसार दुःखसागर से पार करने वाला है।

देवम् = दिव्य गुण दाता अर्थात् प्रकाश, विज्ञान, विजय और आनन्द आदि अभीष्ट के दाता।

देवत्रा = देवा में अर्थात् सूर्य आदि प्रकाशकों, विद्वानों=, धर्म-योद्धाओं, उपासकों, धार्मिकों वा ज्ञान इन्द्रियों में और।

---

(४) जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो निदहाति वेदः। सनः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः।

ऋ० मं० १ सू० ९९ मं० १॥

(५) यः सेतुरीजानामक्षरं ब्रह्मयत् परम्। अभयं तितीर्षतां पारं नाचिकेतंश्‌ शकेमहि। कठ० ३। २॥

(६) देखो पृष्ठ ४५ प्र० १३॥

(७) तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म तदेवामृतमुच्यते। तस्मिन्‌ लोकाः श्रिता सर्वे तदु नात्येति कश्चन॥ कठ० ५। ८॥

(८)—स एष पूर्वेषामपि गुरुः कालेनाऽनवच्छेदात्। यो० १। २६॥

सूर्य्यम् * = सर्वप्रकाशक, सर्वाधार, परमेश्वर को अर्थात् अन्तर्यामी रूप से सर्वव्यापक और सर्वज्ञ चराचर के स्वामी अन्त और सूर्य्य आदि लोकों को रचकर धारण करने वाले परमात्मा को।

अगन्म = जानें = प्राप्त हों अर्थात् सब अज्ञान अन्धकार ९ से तथा भ्रम भँवर ९ से निकल, पूर्ण आस्तिकता ९ और आत्मविश्वास से योगसमाधिद्वारा मोक्ष के लिये १०-१२साक्षात् करें। जो ज्योतिः = स्वयं प्रकाशरूप, सर्वप्रकाशक, अर्थात् जिस प्रकार सूर्य प्रकाशित होकर पृथिवी, चन्द्र आदि लोकों वा तारों को प्रकाशित करता है इसी प्रकार सदा स्वयं प्रकाश परमेश्वर सूर्य आदि को भी प्रकाशित करता है।

---

* टिप्पणी—अखण्ड सर्वत्र ब्रह्म को खण्ड रूप सूर्य स्थ एवं सूर्याभिमानी मान कर खण्ड ब्रह्म सहित सूर्य लोक का उपासना वा केवल सूर्य का ध्यान नाम विषय करना ध्यानघातक और भ्रमवर्धक है ॥

[९]—नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहितः ॥ कठ० ५३।

सम्यग् ज्ञानेन ·· यम् पश्यन्ति यतयःक्षीणदोषाः ॥मु० ४८॥

अस्तीति ब्रुवतोन्यत्र कथं। तदुपलभ्यते ॥ कठ० ॥११३॥

(१०) अशब्दमस्पर्शमरूप...निचाय्यतं मृत्युमुखात्प्रमुच्यते ॥कठ०३।१५॥

(११) देखो पृष्ठ ५३। प्र० २॥

(१२) भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः। क्षीयन्तेचास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे। मुण्डक० ४०॥

उत्तमम = सब से श्रेष्ठ निर्धूम १२ [धुआं रहित] ज्योति के समान है ॥

अन्वितार्थाः

(तमसः) अन्धकार [अज्ञान] (परि) हीन (स्वः) प्रकाश स्वरूप, (उत्तरम्) बन्धनोत्तरवर्त्ती (देवत्रा) देवों के (देवम) दिव्यगुण दाता (उत्तमम्) उत्तम (ज्योतिः) स्वंतः प्रकाश (सूर्य्यम्) अन्तर्यामी सर्वप्रकाशक परमेश्वर को (पश्यन्तः) दर्शनाभ्यासी (वयम्) हम (उत्) साक्षात् रूप से (अगन्म) प्राप्त हों ।

विस्पष्टार्थः

विस्पष्टार्थः = हम उस अज्ञान और अंधकार से दूर, ज्ञान, प्रकाश तथा सुख स्वरूप, संसार दुःख सागर से पार करने वाले सदा एकरस वर्त्तमान जन्म मरण आदि अविद्याकृत क्लेशों से परे, नित्यमुक्त, सब प्रकाशकों के प्रकाशक, विद्वानों के गुरु, धार्मिक देश. धर्म वा प्रजारक्षक वीरों को दुरात्माओं पर विजयी करने वाले, अपने उपासक मुमुक्षुओं को आनन्द देने वाले, सब जड़ चेतनों में अन्तर्यामी (अदृश्य) रूप से

(१२) आदित्यवर्णं तमसः परस्तात् । यजु० ३१ । १८ ॥

व्यापक, धर्त्ता, भर्त्ता, स्वामी, सूर्य्यों के सूर्य्य परब्रह्म को, जगत् की विचित्र रचना, तथा संसार का अटल वा एक से नियम और निष्पक्ष न्याय आदि में चलना देख, निश्चय से इस सब का कर्त्ता जान काम, क्रोध आदि को अपने वश में कर, धर्म से सब वर्णाश्रमों के कर्त्तव्य कर्म धर्म पूरे करते हुये, अटल आत्मविश्वास (अपने ऊपर भरोसा) शङ्का रहित आस्तिकता, और दृढ़ भक्ति और उत्कट प्रेम से श्रद्धा पूर्वक योगाभ्यास द्वारा साक्षात् कर मोक्ष का आनन्द प्राप्त करें

१५--ओ३म् उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥

यजु० ३३ । ३१ ॥ सा० पू० १ । १ । ३ । ११ ॥ ऋ० १ । ५० । १ ॥ अथ० १३ । २ । १६ ॥

पदाः=ओ३म् । उत् । उ । त्यम् । जातवेदसम् । देवम् । वहन्ति । केतवः । दृशे । विश्वाय । सूर्य्यम् ॥

पदार्थाः—

उत्=आश्चर्य वा अद्भुत रीति से अर्थात् ऐसी उत्तमता से कि नास्तिक लोग जगत् में ही आसक्त न रह कर जगत्कर्त्ता के सच्चे भक्त बनें ।

उ=तर्क वा प्रश्न करती हुईं अर्थात् यह कहती हुईं कि इस पृथक् पृथक् विविध रचना और अटल नियमों को ध्यान से

देख कर क्या कोई भी नास्तिक सादि, सान्त, अकर्त्ता, एक देशी, अशक्त ईश्वर वादी रह सकता है ?

त्यम्=तम्=उस जैव (जीव के) गुणों से परे रहने वाले अर्थात् सर्वव्यापक १ सर्वज्ञ नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव अजर१ अमर, शुभाशुभ कर्मों, दुःख(सुख कर्म), फलों, वासनाओं, शोक मोह आदि पापों (विषय भोग आदि) से (जिन से बड़े से बड़े महात्मा हमारे आदर्श मर्य्यादा २-३ पुरुषोत्तम भी नहीं बचे) सर्वदा अलग रहने वाला.

जातवेदसम्=वेद प्रकाशक, जगत् में विद्यमान और सर्व-शिक्षक अर्थात् जो ऋग्, यजुः, साम और अथर्व चार वेदों को प्रकट या प्रसिद्ध, और जगत् को उत्पन्न, करके असंख्यात प्राणियों या अन्य सब पदार्थों को यथावत् जानता है। और स्वयं साक्षी रहता हुआ अन्तःकरणों में उदासीनता से शिक्षा दे अधर्म से बचा, धर्म में लगा तथा सुख दुःख रूप दंड वा पारितोषिक दे, अपनी शिक्षा [वेदों], का प्रचार करने से जातवेद कहाता है।

देवम्=उस दिव्य गुण युक्त जगदीश्वर को अर्थात् प्रकाश,

(१) देखो पृ० ४५ प्र० १७ ॥

(२) असम्भवं हेममृगस्य जन्म, तथापि रामो लुलुभे मृगाय ॥

(३) शोकरक्तेक्षणः श्रीमानुन्मत्त इव लक्ष्यते। वाल्मीकि वन० ६०।१०। 'वृक्षाद्वृक्षं प्रधावन्स गिरीश्चापि नदीनदम्। बभ्राम विलपन् रामः शोकपङ्कार्णवप्लुतः। वन० ६०। ११ ॥

आनन्द, ज्ञान, दया, न्याय, समदृष्टि, पालन, पोषण आदि सबसे उत्तम गुणों के अपार भंडार सर्वेश्वर को।

वहन्ति = प्राप्त कराती, जतलाती वा वर्णन करती हैं अर्थात् यह निश्चित ज्ञान कराती हैं कि यह संयोग वियोग शक्तिहीन परमाणुओं के संयोग से बने पदार्थों का समूह रूप जगत् सर्वाधार, सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, निराकार, निर्विकार, परमात्मा के ज्ञान और प्रकृति की क्रिया के संयोग से रचा गया है (अन्यथा संयोग, पाकजगुण४ कर्त्ता५ के विना कहाँ से आता), और वही ६ इस सबका नियामक (चालक), और सब विद्याओं का मूल भंडार पूर्ण, निर्भ्रान्त ज्ञानी, वेदों का प्रकाशक है।

केतवः = सूर्य की किरणें तथा तद्रूप (वैसी ही) वेदों की ऋचायें, अर्थात् सूर्य्य किरणों* के द्वारा वेदों की ऋचायें ठीक उस विधि से जैसे कि भूगोल में वर्णित पृथिवी के

(४) कारणगुणपूर्वकाः पृथिव्यां पाकजाः। वैशेषिक० ७।१।६॥

(५) तेषां संयोगहेतुरपरोपिदृष्टः। श्वेता० ५। १२॥

(६) पुरुष एवेदं विश्वं कर्म तपो ब्रह्म परामृतम्। एतद्यो वेद निहितं गुहायां सोऽविद्याग्रन्थिं विकिरतीह सोम्य। मुण्डक० ३२॥

---

* वेदों को भूगोल की और सूर्य किरणों को उपचार से चित्र की उपमा दी गई किंच यद्यपि जगत् यहां चित्र रूपी है परन्तु विना सूर्य के न होने के समान होता॥

खंड और प्रत्येक खंड के जड़ पदार्थों को, चित्र प्रत्यक्ष कराता है।

दृशे=देखने वा निश्चय से जानने के लिये।

विश्वाय*=विश्व=सब चराचर जगत् के अर्थात् असंख्य सूर्य ७ पृथिवी आदि लोकों के, और इन लोकों के रहने वाले असंख्यासंख्य प्राणियों के, तथा विश्व की सब विद्याओं के मूल कारण वेदों के।

सूर्य्यम्=धारक,७ आकर्षक,११ प्रकाशक, नियामक, और अन्तर्यामी१० प्राणाधार ८,९ जीवित रखने वाले तथा मूल आचार्य्य, और प्राणपुञ्ज सूर्य लोक, के प्रकाशक को॥

अन्वय:

(विश्वाय) सर्व प्राणियों के (दृशे) दर्शनार्थ (त्यम्) उस (जातवेदसम्) वेद प्रकाशक (देवम्) दिव्य गुण युक्त (सूर्यम्) सूर्य्यों के सूर्य सर्व प्रकाशक ईश्वर को (केतवः) सूर्य किरणें (उ) अभ्रान्ततया (उद्वहन्ति) प्राप्त कराती हैं॥

(७) देखो पृ० ४७ प्र० २०॥

(८) देखो पृ० ७० प्र० ७८॥

(९) मनोमयः प्राणशरीरनेता.........मुण्डक० ३९॥

(१०) देखो पृ० ४४ प्र० १४॥

(११) यदा सूर्य्यममुं दिवि शुक्रं ज्योतिरधारयः आदित्ते विश्वा भुवनानि येमिरे॥ ऋ० ८।१२।३०॥

*षष्ठी विभक्ति के अर्थ में चतुर्थी।

विस्पष्टार्थः-

उस उपर्युक्त परमेश्वर, वेदों के प्रकाशक, विविध जगत् के कर्त्ता, सब में सब ओर से व्यापक हो सब जड़ चेतन जगत् को अपने नियम से चलाने वाले, सब देवों के पूजनीय देव अन्तर्यामी सब प्राणधारी और अप्राणी जगत् के प्रकाशक, परमेश्वर, को जिसका चारों वेद नाना विधि से वर्णन करते हैं और सूर्य की किरणें जिसके उच्च शिक्षाप्रद जगत् की अद्भुत रचना आदि का दृश्य दिखा कर, (जो रचना मानुषी वैज्ञानिक मस्तिष्क में सृष्टि के अन्त तक नहीं आ सकती) निश्चय कराती हैं कि सब जगत् अर्थात् वाष्पयानरूपी असंख्यात सूर्य आदि लोकों का (हाँकने वाले 'ड्राइवर' सहित वाष्पयान 'ट्रेन' की भांति जो हाँकने वाले अल्पज्ञ जीवों के होते हुये भी लड़ जाती हैं) विना परस्पर लड़े नियम से चलना, सब प्राणियों का उन की इच्छा के विरुद्ध संसारी राजा की भांति निष्पक्ष पूर्ण न्यायसे दंड पाना, धर्मात्माओंका पूर्वकृत पापों का फल दुःख, पापियों को ऐसे ही सुख मिलना।

तथा जन्म से निर्धन, रोगी, धनवान्, आरोग्य आदि का होना; योनियों का अनेक होना और फिर प्रत्येक योनि में भी शुभाशुभ विविध शरीरों को प्राणियों का प्राप्त होना आदि सहस्रों अपितु अगणित बातें आवागमन (पुनर्जन्म) पूर्व जन्म के कर्म और वासनाओं के अनुसार जन्म आदि वा दुःख सुख आदि देने वाले सर्वज्ञ, न्यायकारी, समदृष्टि,

पितावत् रक्षक, सर्वव्यापक, एक महेश्वर की सत्ता को सत्य दृढ़ और प्रत्यक्ष साक्षी होकर ध्यानशील नास्तिकों तथा संशयात्माओं को सच्चे आस्तिक होने की शिक्षा दे रही है।

संदिग्ध हृदयों को उपर्युक्त संकेतों से ईश्वर सृष्ट जगत् कार्य, तथा उसके कारण को विचार पूर्वक देख, तथा यथाविधि संध्योपासना द्वारा सूक्ष्म तत्त्वों का यथार्थ निश्चय कर, सत्य से "सत्येन लभ्यः" (मु० ४८ के अनुकूल) अन्तःकरण में भर, तथा भरी अन्तःकरणगत भावों, ईश्वर-शिक्षा या प्रेरणाओं का अनुभव कर अपने आन्तरिक संशयों *को नष्ट करना उचित है॥

१६ ओ३म् चित्रन् देवानामुदगा दनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः। आप्रा द्यावा पृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस् तस्थुषश्च स्वाहा।

ऋ० १—११५।१—तथा यजु० ७।४२॥ सा० पू० ६—३ १४।३॥ अथ० १३।२।३५॥

* अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति।
नायं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः॥ गीता ४।४०

पदाः—ओ३म् । चित्रम् । देवानाम् । उत् । अगात् । अनी-कम् । चक्षुः । मित्रस्य । वरुणस्य । अग्नेः । आ । अप्राः । द्यावा । पृथिवी । अन्तरिक्षम् । सूर्य्यः । आत्मा । जगतः । तस्थुषः । च । स्वाहा ॥

पदार्थाः—

चित्रम्=अद्भुत वा आश्चर्य्य स्वरूप एकला पूजनीय परमात्मा ।

देवानाम्=ध्यानहीन विद्वानों की बुद्धि (विवेककरण) से अन्यथा विद्वान् योगियों के अन्तःकरण में; अर्थात् अमूर्त १-२ होने से नेत्र आदि के समान विद्वानों के हृदयों में सदा विराजता हुआ बिना उपासना या योग के, अन्यथा जिस प्रकार मूर्त (स्थूल) नेत्रों से मूर्त्त वस्तु को प्राप्त करते हैं वैसे ही अपितु असंख्य गुणा अधिक विद्वान् योगियों की बुद्धियों में अमूर्त्त परमात्मा ।

उत्—ऊपर=परं, अन्यथा उत्तमता से अर्थात् कहने सुनने देखने वा साधारण ध्यान से दूर वा अप्राप्य ४-५, अन्यथा साक्षात् रूप से ।

(१) न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः ॥ यजु ३२ । ३ ॥

(२) देखो पृ० ४२ प्र० १ ॥

(३) देखो पृ० ४३ प्र० ८ ॥

(४) नैनद्देवा आप्नुवन् पूर्वमर्षत् ॥ यजु० ४० । ४ ॥

(५) न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम्, हृदा मनीषा मनसाभिक्लृप्तो य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति० ॥ कठ० ६ । ९ ॥

अगात्*६—६=जाना है =है, अन्यथा प्राप्त होता है अर्थात् हटता बढ़ता वा अप्राप्य होता जाता है। अन्यथा सम्यक् (ठीक ठीक निश्चय से) वा साक्षात् रूप से जाना जाता वा देखा जाता है।

अनीकम्=सर्वश्रेष्ठ और उपकारक गुण युक्त, बल स्वरूप,

(६) यथादर्शे तथात्मनि, यथा स्वप्ने तथा पितृलोके, यथा अप्सु परीवददृशे तथा गन्धर्वलोके, छायातपयोरिव ब्रह्म-लोके, अर्थात् दर्पण के समान आत्मा में (स्वच्छ दर्पण के समान निर्मल बुद्धि में परमात्मा का स्वरूप प्रकाशित होता है), जैसे स्वप्न में जाग्रत के संस्कारमात्र रहते हैं, ऐसे ही सकाम कर्म करने वालों को आत्मदर्शन स्पष्ट नहीं होता, जैसे जलमें प्रतिबिम्ब ऐसे ही विज्ञानी आत्मा को परमात्मा स्पष्ट दीखता है और जैसे छाया और धूप अलग अलग दीखते हैं ऐसे ही योगी मुमुक्षुओं को ब्रह्म और प्रकृति ॥ कठ० । ६ । ५ ॥

[७] हिरण्मये परे कोशे विरज ब्रह्म निष्कलम्, तच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिस्तत्यदात्मविदोविदुः ॥ मुण्डक० ४१ ॥

[८] नारदः खलु ऋ०, यजु०, साम, अथर्वाः तथा १४ अन्या विद्या अधिजगे तथापि नात्मविदो बभूव, स्वयमेव स कथयति 'सोऽहं भगवो मन्त्रविदेवास्मि नात्मविद् इति;

[९) नायमात्मा बलहीनेन लभ्यो नच प्रमादात्तपसो वाप्य-लिङ्गात् । एतैरुपायैर्यतते यस्तु विद्वांस्तस्यैष आत्मा विशते ब्रह्मधाम-म् । । मुण्डक० ५७ ॥

* भूत क्रिया वर्त्तमान काल के अर्थ में ।

अर्थात् अत्यन्त बल वाला काम, क्रोध१०, लोभ, मोह आदि को जीतने की शक्ति११ देने, जीवित रखने वाला, दुःखदायी पापों से छुड़ा सुखदायक धर्म का एकमात्र शिक्षक।

चक्षुः=बाह्याभ्यन्तर दर्शक, प्रकाशक वा विज्ञापक [जतलाने वाला] अर्थात् बाहर की शारीरिक मूर्त्त वस्तुओं को नेत्र और सूर्य्य आदि के द्वारा दिखाने वाला, आभ्यन्तर वा अमूर्त्त [सूक्ष्म], निराकार, आत्मिक तत्त्वों को अन्तःकरण में प्रकाशित करने वाला नेत्र के समान, सुखदाता, धर्मपथ दर्शक, और सत्य उपदेष्टा परमेश्वर।

मित्रस्य=सूर्य्य का, प्राण का वा सर्वप्रिय परोपकारी मनुष्यों [स्त्री पुरुषों] का।

वरुणस्य=चन्द्र लोक का, उदान का तथा सर्व गुण सम्पन्न श्रेष्ठ आत्माओं का।

अग्नेः=अग्नि वा बिजुली के रूप गुण आदि [शिल्प विद्या के लिये], व्यान का तथा वैज्ञानिक, शिल्पी, कलाकुशल, प्राणियों का।

आ=सब ओर से।

[१०] स प्राप्यैनमृषयो ज्ञानतृप्ता: कृतात्मानो वीतरागाः प्रशान्ताः। ते सर्वगं सर्वतः प्राप्य धीरा युक्तात्मानः सर्वमेवाविशन्ति। मुंडक० ५८॥

(११) देखो पृ० ५७। प्र० २०॥

अप्रा = व्यापक हो कर धारण, पोषण आदि १२ करने वाला।
द्यावा = द्युलोक अर्थात् सूर्य्य आदि प्रकाश वाले लोकों का
पृथिवी = पृथिवी जैसे अँधेरे लोकों का।
अन्तरिक्षम् = मध्यस्थ लोकों का अथवा आकाश का* अर्थात् प्राकृत परमाणुओं से बना १३-१४ एक स्थूल भूत जो ५ ज्ञान इन्द्रियों से अज्ञेय [न जानने योग्य], सब सूर्य आदि लोकों के, तथा सब प्राणियों के स्थूल शरीरों के भीतर और बाहर सब ओर सान्तर व्यापक [घुसा हुआ] स्थूल जगत् का स्थान, बीच की प्रलयों में न नष्ट १५ होने वाला और जैसे पृथिवी पे नाक, जल में

(१२) पृ० ७१ प्र० ८३ ॥

(१३) तन्मात्रेभ्यः स्थूलभूतानि । सां १ । ६१ ॥

(१४) प्राणरसनचक्षुस्त्वक् श्रोत्राणीन्द्रियाणि भूतेभ्यः ॥ न्याय० १ । १ । १२ ॥

(१५) अहङ्कारात् पञ्चतन्मात्राणि । सा०] लिङ्गाच्चा ऽनित्यः शब्दः वै० २ । २ । ३२ ॥

* अन्तरिक्ष = आप आकाश । निरु० २ । १० ॥

"आपो वा अर्कस्तद्यदपां शर आसीत् तत् समहन्यत" ॥ बृ० १ २ । २ ॥ यहां आकाश के अर्थ आप और बह्माण्ड के हैं जो जीव सहित प्रकृति का क्षोभ (संचालित = गति) पहुंचाने से उत्पन्न होता है ॥

"वागेवायतनमाकाशः प्रतिष्ठा" ॥ बृ० ४ । १ । २) "दहरो ऽस्मिन्नन्तराकाशः ॥" (छां० ८ । १) [बृ० ४ । ४ । २२] आदि शास्त्रों में आकाश नाम परमात्मा का है, परन्तु यहां टिप्पणी में कहे दोनों अर्थों की संगति नहीं लगती। अतएव उपर्युक्त अर्थ संगत है ॥

जीभ, अग्नि से आँखे, वायु से त्वचा बनती है, ऐसे ही शब्दगुण युक्त१६-१७ आकाश श्रोत्र [कान) का कारण है।

सूर्यम् = स्वयं प्रकाश, जगत् का जनक [पिता], अन्तर्यामी प्रेरणा रूप से धर्म की शिक्षा देने वाला परमेश्वर।

आत्मा = सर्वत्र निरन्तर व्यापक अर्थात् जगत् और उसके कारण प्रकृति में सवत और सर्वदा [निरवयव होने से] विना अन्तर के व्यापक परमात्मा।

जगतः = प्राणधारी चेतन मनुष्य आदि का।

तस्थुषः = प्राणरहित, जड़ अर्थात् स्वतन्त्र न चलने वाले नदी आदि तथा ईश्वर के प्रेरित नियम में चलने वाले सूर्य आदि लोकों का।

च = भी।

स्वाहा = सुन्दर वा उत्तम वाणी है, आहा॥

अन्वितार्थः

जगतस्तस्थुषश्च आत्मा सूर्य द्यावा पृथिवी अन्तरिक्षं आप्रा मित्रस्य वरुणस्याग्नेश्चक्षु देवानां उदगाच्चित्रमनीकं स्वाहा॥

(जगतः) चेतन (तस्थुषः) जड़ का (आत्मा) व्यापक, (सूर्य) प्रकाशक (द्यावा) प्रकाश वाले, (पृथिवी)

(१६) देखो पृ० ६१ प्र० ४५॥

(१७) परिशेषाल्लिङ्गमाकाशस्य॥ वै० २। १। २७॥

अंधेरे, (अन्तरिक्षम्) मध्यस्थ लोकों का (आप्रा) धारण करने वाला; (मित्रस्य) हितकारी (वरुणस्य) श्रेष्ठ (च) और (अग्नेः) ज्ञानियों का (चक्षुः) पथदर्शक (देवनाम् उद्गात्) अयोगी विद्वान् की ज्ञान शक्ति से बाहर; किन्तु विद्वान् योगियों को साक्षात् दर्शन देता है (चित्रम्) कैसी निराली (अनीकम्) शक्ति वाला है (स्वाहा) आज्ञा ॥

विस्पष्टार्थः

यह सत्य बात है कि वह निराला, अनुपम, ईश्वर ज्ञान इन्द्रियों और अन्तःकरण अपितु आत्मा में रहता हुआ, दर्शक और प्रयत्न के बिना प्रत्यक्ष न होने वाला, वेदपाठियों को ज्ञान (दर्शक) के होते हुये, प्रयत्न रूप योगाभ्यास तथा समाधि से अन्तःकरण शुद्ध किये बिना, साक्षात् नहीं होता, परन्तु विद्वान् योगियों को पूर्ण श्रद्धा और दृढ़ प्रेम से प्रयत्न करने पर सक्षात् (आमने सामने) हो जाता है।

उस श्रेष्ठतम अत्यन्त बलवान् की सहायता से उसके उपासक ब्रह्मचर्य से शारीरिक, और राग द्वेष आदि के त्याग से मानसिक एवं सामाजिक तथा अन्तःकरण को सर्वथा शुद्ध कर आत्मिक तत्वों के ज्ञान से आत्मिक बल प्राप्त करते हैं।

वह परमेश्वर, सूर्य चन्द्र विद्युत् आदि तथा उनके गुणों को प्रकाशित कर शिल्प आदि का शिक्षक और परोपकारी देशहितैषी वा सर्व प्राणियों के शुभचिन्तक श्रेष्ठ ज्ञानी स्त्री पुरुषों को नेत्र के समान सुख देनेवाला, ज्ञानपथदर्शक, तत्क्षण उपदेष्टा, प्राणों का आधार, प्रकाश, अप्रकाश वाले लोकों

आदि को रचकर धारण करने वाला, सर्व प्राणियों के अन्तःकरणों में रहकर उदासीनता से धर्मोपदेष्टा और सब जड़ तथा चेतन जगत् में व्यापक होकर सब का धारक, पोषक, नियामक आदि है।

एवं विध ज्ञान प्राप्त कर उपासकों को उचित है कि ब्रह्मचर्य धारण, रागद्वेष आदि दोषों का त्याग और काम क्रोध आदि को वश में कर सामाजिक शारीरिक और आत्मिक बल प्राप्त करें तथा शिल्प आदि द्वारा अपनी और अन्यों की भी उन्नति करें और करावें॥

१७-ओ३म् तच्चक्षुर्देवहितम् पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतम् जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतम् प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतम् भूयश्च शरदः शतात्

यजु० ३६।२४॥

पदाः ओ३म तत्। चक्षुः। देवहितम्। पुरस्तात। शुक्रम्। उत्। चरत्। पश्येम। शरदः। शतम्। जीवेम। शरदः। शतम्। शृणुयाम शरदः। शतम्। प्रब्रवाम। शरदः। शतम्। अदीनाः। स्याम। शरदः। शतम्। भूयः। च। शरदः। शतात्।

पदार्थाः—

तत्=उस चेतन, अतीन्द्रिय अर्थात् निराकार, सर्वव्यापक ब्रह्म को जो अत्यन्त सूक्ष्म[1] होने से इन्द्रियों[२-५] से नहीं जाना जाता।

चक्षुः=नेत्रों के समान सबको देखनेवाले पथदर्शक।

देवहितम्=देवों के हितकारी अर्थात् सदाचारी, धार्मिक (धृति क्षमा आदि गुणों के रक्षक), अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य आदि यमों; शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्यायादि नियमों को पालकर धारणा ध्यान समाधि करने वाले, संयमी* तथा विद्वान् परोपकारी उपासकों के हितकारी अर्थात् सब अभीष्ट सुख देने वाले और अपने भक्तों के *अन्तःकरणों को ज्ञान से भरने वाले

(१) अक्षरात्परतः परः ॥ मुण्डक २४ ॥

(२) देखो पृ० ३० प्र० ४ ॥

(३) नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन। यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा वृणुते तनूं स्वाम् ।। मुण्डक० ५६॥

(४) अतीन्द्रियमिन्द्रियम्······सांख्य० २।२३॥

(५) इन्द्रियेभ्यः परं मनो मनसः सत्त्वमुत्तमम्। सत्त्वादधि महानात्मा महतोऽव्यक्तमुत्तमम्। अव्यक्तात्तु परः पुरुषो व्यापकोऽलिङ्ग एव च। यज्ज्ञात्वा मुच्यते जन्तुरमृतत्वं च गच्छति ।।

कठ० । ६। ७, ८॥

---

*त्रयमेकत्र संयमः। योग ३। ४॥ अर्थात् धारणा, ध्यान और समाधि ये तीनों इकट्ठे संयम हैं ।।

*जो नास्तिक ईश्वर का ध्यान उपासना नहीं करते वे परमेश्वर

शुक्रम्=सब से बली ६, अत्यन्त पवित्र ७, जगत्कर्त्ता को अर्थात् जो न कभी किसी काल में पाप करता है' और न मोह लोभ आदि, किन्तु अपनी पवित्र दयायुक्त न्याय शक्ति से शासन करता है, और जिस के संग (ध्यान) से जीवात्मा भी, सब काम क्रोध आदि पाप, भ्रम, अज्ञान आदि जैव दुर्गुणों से छूट, पवित्र८ हो जाता है।

पुरस्तात्=जो पूर्व काल से अर्थात् सृष्टि के पहले से वा अनादि काल९ से।

उत्=उत्तमता (अविकारिणी शक्ति) से महाप्रलय के पीछे १० वा अनन्त काल पर्यन्त।

चरत्=चरति=व्यापक रहता हुआ सब को यथावत् ११ जानता है।

पश्येम=हम योग दृष्टि से देखें अर्थात् वेदशास्त्रों के अनुकूल जगत् की रचना को देख, ईश्वरीय विज्ञान प्राप्त करें और

(६) देखो पृ० ५७ प्र० २० ॥

(७) देखो पृ० ४२ प्र० १ ॥

(८) यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णं कर्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम्। तदा विद्वान् पुण्यपापे विधूय निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति ॥ मुंडक० ४६ ॥

(९) देखो पृ० ४२ प्र० २० ॥

(१०) प्रत्यङ् जनास्तिष्ठति संचुकोचान्तकाले ॥ श्वेता० ३ । २ ॥

(११) देखो पृ० ४२ प्र० १ ॥

का दिया हुआ ज्ञान ग्रहण करने को अशुद्ध अन्तःकरण के कारण समर्थ नहीं होते ॥

ध्यान योग से आत्मा परमात्मा का यथार्थ निश्चय कर सच्चे आस्तिक हो ईश्वर को साक्षात् करें वा करते रहें।

शतम्=सौ।

शरदः=सालों तक।

जीवेम=जीवें=प्राण धारण करें। जीवन से लाभ उठावें अर्थात् पूर्ण ब्रह्मचर्य्य १२ से वेदों को पढ़, धर्म से गृहस्थ १३ हो लौकिक कामनाओं को धर्म युक्त १४ पूर्ण पुरुषार्थ से प्राप्त करते हुये, आयु के तीसरे १३ भाग में वानप्रस्थी हो, शम दम आदि तपों से सब शीतोष्ण आदि द्वन्द्वों को जीत, चौथेपन में संन्यासी १३,१५,१७ हो अभय दान, सत्य उपदेश, १६,१८ प्राकृत और आत्मिक

(१२) ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत। इन्द्रोह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्वराभरत्॥ अथर्व० का० ११ अनु० ३ म० १९॥

(१३) ब्रह्मचर्याश्रमं समाप्य गृही भवेत्। गृही भूत्वा वनी भवेद्वनी भूत्वा प्रव्रजेत्॥ शतपथब्राह्मणे॥

(१४) न जातु कामान्न भयान्न लोभाद्धर्मं त्यजेज्जीवितस्यापि हेतोः। धर्मो नित्यः सुखदुःखे त्वनित्ये जीवो नित्यो हेतुरस्य त्वनित्यः॥ महाभारत॥

(१५) ब्रह्मसंस्थोऽमृतत्वमेति॥ छांदो० प्रपा० २ खं० २३॥

(१६) आ पवस्व दिशांपत आर्जीकात् सोम मीढ्वः। ऋतवाकेन सत्येन श्रद्धया तपसा सुत इन्द्रायेन्दो परिस्रव॥ ऋ० । ९ । ११३ । २॥

[१७] वनेषु तु विहृत्यैवं तृतीयं भागमायुषः। चतुर्थमायुषो भागं त्यक्त्वा संगान् परिव्रजेत्॥ मनु० ६ । ३३॥

(१८) प्राणायामैर्दहेद्दोषान् धारणाभिश्च किल्बिषम्। प्रत्याहारेण संसर्गान् ध्यानेनानीश्वरान् गुणान्॥ मनु० ६ । ७२॥

तत्त्वों के यथार्थ प्रकाश आदि से संसारी जीवों को भी अविद्या आदि क्लेशों से छुड़ाने, निष्काम परोपकार से संसारी सुख यथा मोक्षानन्द का मार्ग यथायोग्य दिखाते हुये, निर्विकल्प समाधि १८-१९ द्वारा परमेश्वर को साक्षात् २० करके, परमानन्द २१ को पावें।

शरदः शतम्=सौ साल तक।

शृणुयाम=सुनें अर्थात् वैदिक धर्म के सुखदायक सदुपदेशों ईश्वर के गुणों, और अपनी सामाजिक, दैशिक मंगल कामनाओं की पूर्ति तथा विदेशों में वैदिक धर्म की जय को सुनें सुनावें।

शरदः शतम्=सौ वर्ष तक अर्थात् सौ शरद ऋतुओं के बीतने तक।

प्रब्रवाम=उत्तमता से पढ़ते वा बोलते रहें अर्थात् वेद, उपवेद आर्षग्रन्थों तथा गौरव पूर्ण अपने पूर्वजों के इतिहासों को पढ़ें पढ़ावें, उपदेश करें, और वेदादि २२ की ही व्याख्या २३ करके

—

(१९) ध्यानयोगेन सम्पश्येद्गतिमस्यान्तरात्मनः ॥ मनु० ६ । ७३

(२०) सम्यग्दर्शनसंपन्नः कर्मभिर्न निबध्यते ॥ मनु० ६ । ७४ ॥

(२१) स यो ह तत्परमं ब्रह्म वेद ...तरति शोकं तरति पाप्मानं गुहाग्रन्थिभ्यो विमुक्तोऽमृतो भवति ॥ मुण्डक० । ६२ ॥

(२२) ऋतं वदन्नृतद्युम्न सत्यं वदन्सत्यकर्मन् । श्रद्धां वदन्त्सोम राजन् धात्रा सोम परिष्कृत इन्द्रायेन्दो परिस्रव ॥ ऋ० ९ । ११३ । ४ ।

(२३) यद्देवा यतयो यथा भुवनान्यपिन्वत । अत्रा समुद्र आ गूढमा सूर्यमजभर्तन ॥ ऋ० मं० १० सू० ७२ मं० ७ ॥

गुप्त तत्त्वों का प्रकाश वा आविष्कार करें, जिससे हम जगद्गुरु२४ यथा पूर्व बनें, और वैदिक गौरव का पुनरुत्पन्न पौधा, वृक्ष बन कर सफल हो।

शरदः शतम्=सौ साल तक।

अदीनाः=दीनता२५ रहित, स्वतन्त्र२६ अर्थात् पूर्ण ब्रह्मचर्य और सदाचार में शारीरिक बल, अनेक कलाकौशल शिल्प और पूर्ण पुरुषार्थ से धनबल, राग २७ द्वेष (स्वार्थपरक वैर) त्याग से वा सच्चे प्रेम, और मनुष्य मात्र के लिये भ्रातृभाव से सामाजिक बल, और मन आदि अन्तःकरण चतुष्टय को पूर्ण सात्विकी बना। इन्द्रियों को स्वाधीन किये हुये ईश्वर उपासना में आत्मिक अर्थात् सर्वोत्तम ब्रह्मबल२८ प्राप्त कर, सर्वथा सर्वदा पूर्ण स्वतन्त्र।

स्याम=होवें और बने रहें।

शरदः शतम्=सौ साल तक।

---

(२४) एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः। स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥ मनु० २। २१॥

(२५) यद्यत् परवशं कर्म तत्तद्यत्नेन वर्जयेत्। यद्यदात्मवशं तु स्यात्तत्तत्सेवेत यत्नतः॥ मनु० ४। १५९॥ किञ्च:—

सर्वं परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम्। मनु० ४। १६०॥

(२७) प्रायश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानां, यस्मिन्विशुद्धे विभवत्येष आत्मा॥ मुंडक० ५२॥

(२८) धिग्बलं क्षत्रियबलं ब्रह्मतेजो बलं बलम्॥ वाल्मीकि॥

भूय = अधिक च = भी शरद् शतात् – सौ साल से	अर्थात् सौ साल से अधिक भी देखें, जीवें, सुनें, सुनावें, बोलें और स्वतन्त्र रहें ॥

अन्वयः—(यत् = यम्) चक्षु देवहितं शुक्रं पुरस्ताद्ब-रत् तत् (तम्) पश्येम शरदः शतम् आदि ।

विस्पष्टार्थः

इन्द्रियों से न जानने योग्य निराकार ब्रह्म को जो अपने उपासकों को धर्म शिक्षा रूप हित करने वाला है । और जो अनादि, अनन्त, अत्यन्त पवित्र प्रत्येक सृष्टि के पहले से पीछे तक सदा एकसा रहता हुआ जगत्कर्त्ता है, हम सब लोग और हमारी आर्य्यसन्तानें सौ साल से विशेष समय तक तथा सृष्टि के अन्त तक परम्परा से निश्चय मानते हुये उसकी विभूतियों को देख पूरे आस्तिक और ईश्वर भक्त रह कर उसी के ज्ञान, वेदशास्त्रों को सुनें, सुनावें, पढें, पढ़ावें, ।

और उनही के अनुकूल आचरण करते हुये सब प्रकार के अन्याय, अत्याचार, पर विद्रोह, अन्य मतावलम्बियों से द्वेष आदि दुष्ट गुणों और वेदविरुद्ध दूषणों से दूर रहते हुये, राजा, प्रजा, निज बन्धु आदि से "संगच्छध्वं संवदध्वं संवो-मनांसि जानताम्" इस वेद आज्ञा के अनुसार कभी कोई अधार्मिक कण्टक (झगड़ा) न करें, सब के संग "मित्रस्य चक्षुषासमीक्षामहे" इस ईश्वर आज्ञा को हृदय में रख सच्चे प्रेम से वर्त्तते हुये अपनी सब प्रकार की उन्नति करें

सब देशों में अपने धर्म अर्थात् ईश्वरीय ज्ञान वेदों का प्रचार कर. सब विधर्म रूपी विदेशियों को अपनी सच्ची धर्मभक्ति और कर्मपरायणता तथा आत्मिक बल से अपने धर्मगृह में स्वागत कह कर, वैदिक धर्मामृत पान करावें।

पुनः सर्व देशी विदेशी राजा प्रजाओं की दिवारात्रि चित्त आकर्षक मानसिक चिन्ता तथा शारीरिक कष्ट को (पूर्ण धार्मिकता से ईश्वर आज्ञा पालन द्वारा) घटा; निरीक्षण और न्यायालय आदि के व्ययों को रोक, सब भांति स्वबन्धुओं को संतुष्ट कर; सर्वाधिकार यथा विधि सुरक्षित रख कर अथवा यथायोग्य वैदिक सत्याग्रह आदि से प्राप्त कर; सर्वा न्यायों, अत्याचारों एवं सर्व रुकावटों आदि को समूल नष्ट कर के, हम सब सर्वथा वशी रहें वा स्वतन्त्र हों और सदा स्वस्थ और स्वाधीन चित्त रह कर वा हो कर सांसारिक और पारमार्थिक आनन्द के भागी बनें॥

गुरु--मन्त्र

(१) यह मन्त्र इसलिये गुरुमन्त्र कहाता है कि विद्या का आरम्भ इसी मन्त्र से होता है।

(२) इस मन्त्र में वेद सार अर्थात् कर्म ज्ञान और उपासना तीनों विद्याओं का नाम स्मरण है।

(३) इसलिये कि इस मन्त्र के सिखाने को भी श्रेष्ठ विद्वान् धर्मात्मा परोपकारी और सच्चा आस्तिक तथा अस्वार्थान्ध स्त्री वा पुरुष आवश्यक है। जो प्रत्येक पढ़ सकने वाले को निष्पक्ष और निर्लोभ 'यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः" के अनुकूल बतावे ॥ स्मरण रहे कि ऐसे गुरु का यथोचित आदर करना चाहिये। आजकल का सा प्रचरित नास्तिक गुरु किसी को न बना बैठें कि उसकी (युक्ति बुद्धि प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से तथा सृष्टिक्रम वा वेदविरुद्ध अर्थात् सर्वथा मिथ्या) शिक्षा को सत्य मान, अल्पज्ञ शरीर बद्ध अविद्या आदि क्लेशों से ग्रस्त, असत्य, भ्रम आदि अगणित दोषों से दुष्ट, मूढ़ ब्रह्म बन, अथाह अन्धतम अज्ञान सागर के चौरासी भंवर में न फसें ॥

ओ३म् ॥ यजु० ४० । १७ ॥

१८-भूर्भुवः स्वः तत् सवितुर्वरेण्यम् भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात् ॥

यजु० ३६ । ३ ॥ ऋ० मं० ३ सू० ६२ मं० १० ॥ सा० उ० ६ । ३ । १० ॥

पदाः—अ + उ + म । भूः । भुवः । स्वः । तत् । सवितुः । वरेण्यम् । भर्गः । देवस्य । धीमहि । धियः । यः । न । प्रचोदयात् ॥

पदार्थाः—

अ = विराट् १ अग्निः २ विश्वादि ३,
उ = हिरण्यगर्भ ४ वायु ५ तैजसादि ६,
म् = ईश्वर ७ आदित्य ८ प्राज्ञादि ९ ।

(१) विराट् = प्रकाश स्वरूप अर्थात् अत्यन्त वा अनन्त प्रकाश[1] वाला सब सूर्य आदि असंख्य प्रकाश वाले लोकों द्वारा पृथिवी चन्द्र आदि अंधेरे लोकों का नियामक होकर प्रकाशक, तथा मुक्त न होने से महारात्रि के अन्धतम से ढके रूपहीन जीवात्माओं का शरीरों के द्वारा एक दूसरे देहधारी को प्रकट वा प्रकाशित करने वाला और कदापि माया (तम) से न आवृत[2-3] होने वाला ।

(२) अग्निः = ज्ञान स्वरूप अर्थात् सर्वज्ञ वा अत्यन्त ज्ञानी, जो किसी काल में अज्ञान (मोह) वा माया में न फंस सके, प्रत्युत जिसके ध्यानयोग से सब अज्ञान आदि दूर[4] हों और सर्वव्यापक होने से सब स्थानों, सर्व पदार्थों; हमारे अन्तःकरणों और हममें (अणु स्वरूप*

---

(१) भयादस्याग्निस्तपति भयात्तपति सूर्यः ॥ कठ० ६ ॥

(२) देखो पृ० ४५ प्र० १८ ॥

(३) देखो पृ० १०७ प्र० १३ ॥

(४) तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम् ॥ कठ० ५ । १३ ॥

---

* परिमाण तीन होते हैं (१) विभु = अनन्त वा सर्वव्यापक जो ईश्वर के लिये मुख्य, प्रकृति एवं आकाश के लिये गौण है । (२) मध्यम = न अति छोटा और न अति बड़ा बना हुआ पदार्थ जो महत्तत्व

जीवात्माओं ६ में) भी सर्वसाक्षी५ रूप से सदा रहता है,

(५. देखो पृ. ४४ प्र. १४ ॥

[६] य आत्मनि तिष्ठन् .. ..यस्यात्माशरीरम् । बृहदारण्यकस्य अ० ब्राह्मण ॥

से लेकर बड़े से बड़े स्थूल लोक के लिये युक्त हैं। (३) अणु सबसे छोटा जो जीव के लिये मुख्य है।

जीव को मध्यम परिमाण अर्थात् सब शरीर में भरा हुआ मानने पर (१) तो सब विषयों की एक साथ उपलब्धि माननी पड़ेगी जो प्रत्यक्ष के विरुद्ध है। दूसरे (२) जीव स्वरूप मध्यम परिमाण एक समान मानने में छोटे शरीरसे बाहर के विषयों की उपलब्धि (प्राप्ति) होने की आपत्ति होगी। और प्रत्यक्ष के विरुद्ध होगा [illegible] परिमाण रबड़ आदि के समान सकोच विकास वाला [illegible] होने से अनित्य नहु हो जावेगा। क्योंकि नित्य वस्तु में सकोच विकास होने का कोई प्रमाण या उदाहरण नहीं है॥

पुनः यदि जीव को विभु परिमाण मानें, तो विषय प्रतीति अप्राप्त दोनों युगपत् या दोनों में से कोई एक मानने का आपत्तिया होंगी अर्थात् एक आत्मा को सब जगत् [illegible] सुख एक सा प्रतीत होंगे या केवल दुःख और सुख में से कोई एक।

और दुःखी मात्र जीवित [illegible] नहीं रह सकता, और सुखीमात्र नित्य मुक्त होने से शरीर बन्धन में नहीं पड़ सकता, प्रत्युत आप्तकाम होने से वासनाओं की इच्छा में भी नहीं आ सकता और फिर वासनानुरूप यह जगत् नहीं हो सकता। सब जगत में एक ही जीवात्मा अथवा अविद्या में फंसा हुआ एक ही ब्रह्म कल्पित करें तो सब जगत् में सब क्रियायें समान और एक सी होतीं क्योंकि यह अप्रत्यक्ष है सर्वत्र नहीं सब जगत् एक संग शुभ या अशुभ कर्म करता भिन्न २ और भिन्न २ समय पर नहीं। सब एक साथ मरते जीते मुक्त बद्ध आदि होते। इत्यादि दोषापत्तियों से भी जीवों का विभुत्व असिद्ध है।

और इसलिये सत्य आदि धारण करके अत्यन्त पूजनीय और वेदादि शास्त्रों के द्वारा जानने अपितु योगाभ्यास के द्वारा प्राप्त अर्थात् साक्षात् दर्शन करने योग्य७ हैं* ।

(२) विश्व - जो सब में एक प्रकार से ओत प्रोत व्यापक है अर्थात् जो अत्यन्त८ सूक्ष्म होने से जीवात्मा, प्रकृति महत्तत्व, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार, मन, १० इन्द्रियें, ५

---

(७) यत्र ज्योतिरजस्रं यस्मिँल्लोके स्वर्हितम् । तस्मिन्मां धेहि पवमानामृते लोके अक्षित इन्द्रायेन्दो परिस्रव ॥ ऋ० म० ९ सू० ११३ । ७ ॥

(८) यस्मिन् द्यौः पृथिवी चान्तरिक्षमोतं मनः सह प्राणैश्च सर्वैः मुण्डक० १७ ॥

(९) देखो ६२ पृ० ४८ ॥

फिर अल्प नित्य, ज्ञानवान् तथा शक्तिशाली है। हृदय इसके विपरीत प्राकृत कार्य अनित्य तथा शक्तिहीन है अतः "स्वतन्त्रः कर्ता" जीव (जो कि कर्मानुसार ईश्वर प्रेरणा से हृदय प्रवेशाप्रवेश करता है) अपने साधन मात्र हृदय से कदापि नष्ट नहीं हो सकता पुनः जड़ और अनित्य वस्तु से नित्य चेतन वस्तु के नाश का न कोई प्रमाण है न उदाहरण प्रत्युत जीवरहित हृदय तो आप ही नष्ट हो जाता है अतः जीव के अणु होने में कोई आपत्ति नहीं है ॥

प्रमाणों के लिये देखो पृ० ५५ प्र० १०-१७

* अब हमको उचित नहीं कि उस परमपिता के देखते वा जानते हुये मिथ्या भाषण तथा अधर्म करके हम अपने परम पवित्र सबके स्वामी का अपमान करें ॥

शब्द आदि विषयों, ५ आकाश आदि स्थूल भूतों और उन से बने सब जगत् के पदार्थों में निराकार तथा निरवयव१० होने से निरन्तर व्यापक (प्रविष्ट) हो रहा है और सब से महान् होने से सब जगत् उसी में प्रवेश कर रहा है।

[४] हिरण्यगर्भः११=प्रकाश वा प्रकाशकों की माता अर्थात् सूर्य आदि तेज वाले लोकों को उत्पन्न करके उनका धारण वा रक्षण करने वाला अथवा उनकी उत्पत्ति, और स्थिति स्थान।

(५) वायुः=अत्यन्त बल, अनन्त शक्ति११ और सर्वैश्वर्यसम्पन्न परमेश्वर अर्थात् विविध जगत् में वायुवत्‌व्यापक होने से सब जगत् का धारण, आकर्षण तथा लय करने वाला सब प्राकृत और चेतनों का स्वामी।

(६) तैजसः=स्वयं प्रकाश १२ [आप ही प्रकाशित होने वाला], सूर्य आदि लोकों का प्रकाशक अर्थात् इनको प्रकाश वाले बना कर प्रकट करने वाला।

(७) ईश्वर=सब जड़ जगत् कार्य वा कारण और अनन्त चेतन प्राणियों का स्वामी अर्थात् सब जड़ जगत् रच कर धारण, रक्षण१३ तथा लय वा परमाणु रूप करता हुआ अपने अटल नियम में चलाने वाला, और सब प्राणियों को यथाकर्म सत्य न्याय और निष्पक्ष दया से सुख दुःख

(१०) देखो पृ० ५८ प्र० ३२॥
[११] देखो पृ० ५७ प्र० २०—२१॥
[१२] देखो पृ० ३० प्र० १॥
[१३] देखो पृ० ७१ प्र० ८३।

भोग वा नाना योनियों में विविध शरीर उनके कर्म और वासनाओं के अनुसार देने वाला सबका अधिपति।

(८) आदित्य=(दिति=खण्ड, अदिति=अखण्ड) अखण्ड वाला अनादि अनन्त परमेश्वर अर्थात् खंडरहित होने से निर्विकार निराकार आदि अन्तरहित, अर्थात् जो न कभी उत्पन्न हुआ, न हो, और न कभी नष्ट हो अर्थात् जीवों के सब दूषण वा द्वन्द्वों से परे अजर, अमर, परमेश्वर

(९ [illegible]) निर्भ्रान्ति, अनन्त ज्ञानयुक्त, अर्थात् सब चराचर जगत् के व्यवहारों को यथावत् जानने वाला और जैव-अज्ञान वा भ्रान्ति से तीनों कालों में परे, प्रत्युत जो सब अलख अवतारों, मुमुक्षुओं, मुक्तों आदि तु देहधारी कल्पित ईश्वरों का भी ज्ञानदाता है।

भू =प्राणपति, स्वयम्भू, परमेश्वर, अर्थात् जीवों को कर्म करने और कर्मफल भोगने तथा मोक्ष साधने को प्राण आदि देकर जीवित१४ (शरीर रहित) रखने वाला, प्राणाधार होने से प्राणों से भी प्यारा और कर्मविद्या १५ का शिक्षक, प्राण नाम से प्रसिद्ध, परमेश्वर।

भुवः=सर्व दुःख वा दुःख के कारण दूर करने वाला अपान, परमेश्वर अर्थात् जो वेदपाठी ध्यानी महात्माओं, योगियों,

[१४] देखो पृ० ४२ प्र० ३

[१५ भूः=कर्मविद्या। भुवः=उपासना विद्या। स्वः=ज्ञानविद्या यजु० ३६।३॥ श्रीस्वामी दयानन्दभाष्य।

और मुक्ति के चाहने वालों के हृदय में, दया से अपने न्याय आदि गुणों का प्रत्यक्ष (स्पष्ट निश्चय) करा के सर्व दुःखरूप पापों से बचा, प्रारब्धप्राप्त दुःखों को, अपने न्याय और दया स्वरूप ज्ञान से, सुखरूप बना अर्थात् दुःख सुख में उन को सम दृष्टि युक्त करने, और मुक्तों को आनन्द में रखने वाला, उपासना१५ विद्या का शिक्षक दयालु, परमेश्वर।

स्वः = सर्वव्यापक, नियन्ता, सुखस्वरूप, व्यान नाम परमेश्वर अर्थात् सब जड़ (असमर्थ जगत्, प्राण और प्राणधारियों में सब ओर से व्यापक हो सब को अपने नियम में चलाने वाला सब का स्वामी, अनन्त सुखी१६ तथा तीनों कालों में दुःख मात्र से अलग किन्तु अपने उपासकों, तथा सेवक श्रीराम कृष्ण आदि नरोत्तमों तक को सुख देने वाला, और ज्ञानविद्योपदेशक१५, परमेश्वर।

तत् = उस अतीन्द्रिय अर्थात् निराकार, आकाश, इन्द्रियों, मन, बुद्धि, प्रकृति और जीवात्माओं से भी अति सूक्ष्म, अतएव इन्द्रियों की पहुँच से सर्वथा बाहर (परोक्ष) केवल आत्मा में ही साक्षात् होने योग्य परमात्मा।

सवितुः—सब के पिता, सब को यथायोग्य ऐश्वर्य देने वाले, अर्थात् कीट से कल्पित ईश्वरों पर्यन्त सब शरीरधारियों के देहकर्ता, अत्यन्त सच्चे पिता माता की भांति पालन, पोषण, आदि करने वाले, कर्मकाण्डी

[१६] देखो पृ० ४४ म० में।

धर्मात्माओं को सब विद्या, धन, पुत्र, पौत्र, सेवक, मित्र आदि मनुष्य, अश्व, गज, गौ आदि पशु, तथा शारीरिक, सामाजिक और मानसिक बल, सुराज्य, स्वराज्य, वा चक्रवर्ती राज्य आदि सांसारिक सुख नाम अभ्युदय के देने वाले।

निष्काम उपासक वा ब्रह्माण्डी योगियों को पूर्ण विज्ञान, पूर्ण आत्मिक बल, सम्यग् दर्शन, सम्यग् ज्ञान और मोक्षानन्द देनेवाले१७॥

वरेण्यम्=अत्यन्त भजनीय १८—३६=एकमात्र ध्येय=

(१७) यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि श्रिताः। अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते॥ कठ० ६। १४॥

(१८) देखो पृ० ५१ प्र० २१॥

(१९) य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः। यस्य च्छायाऽमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ यजु० २५। १३॥

(२०) यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव। य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ यजु० २३। ३॥

(२१) येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा येन स्वः स्तभितं येन नाकः। यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ यजु० ३२। ६॥

(२२) देखो पृ० ५८ प्र० २४॥

(२३) अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्। युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम॥ यजु० ५। ३६॥

एक मात्र उपासनीय तथा उपासना की आदि और

(२३) देखो पृ० ५८ प्र० २३ ॥

(२४) वेदाहमेतम्पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् । तमेव विदित्वाऽति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥ यजु० ३१ । १८ ॥

(२५) युञ्जते मन उत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः । वि होत्रा दधे वयुनाविदेक इन्मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः ॥ ऋ० ५ । ८१ । १ ॥

(२६) देखो पृ० ४२ प्र० २ ॥

(२७) देखो पृ० १०६ प्र० १० ॥

(२८) मनसैवेदमाप्तव्यं नेह नानास्ति किञ्चन । मृत्योः स मृत्युं गच्छति य इह नानेव पश्यति ॥ कठ० ४ ॥ ११ ॥

(२९) देखो पृ० ४३ प्र० ५ ॥

(३०) तमेवैकं जानथ आत्मानमन्या वाचो विमुञ्चथ अमृतस्यैष सेतुः ॥ मुण्डक० ३७ ।

(३१) प्रभातायां तु शर्वर्यां कृतपौर्वाह्णिकक्रियौ । विश्वामित्रमृषी-श्चान्यान्सहितावभिजग्मतुः । वाल्मीकि० बा० ३१ । २ ॥

(३२) देखो पृ० ३ । पङ्क्ति ३ ॥

(३३) योऽन्यां देवतामुपास्ते न स वेद यथा पशुरेव स देवानाम् ॥ शतपथ० कां० १४ अ० ४ ॥ एवं बृहदारण्यक० १ ४ । १ ॥

(३४) देखो पृ० ४५ टि० "असुर्या ·····म०" ॥

[३५] यः अवतरति स अवतारः - जो उतरता वा उतारा जाता है वह अवतार है ॥

[३६] यस्यात्मबुद्धिः कुणपे त्रिधातुके स्वधीः कलत्रादिषु भौमइज्यधीः । यत्तीर्थबुद्धिः सलिलेन कर्हिचिज्जनेष्वभिज्ञेषु स एव गोखरः ॥ श्रीभागवत १० ।,

अन्त अर्थात् आरम्भी, बालक, अज्ञानी, साधारण सन्ध्या करने वाले, अन्त्यज, शूद्र आदि से लेकर अभ्यासी, युवा वा वृद्ध, ज्ञानी विद्वान् योगी वा विप्र (वेदपाठी) ऋषि (मन्त्रार्थद्रष्टा) महर्षि (परमर्षि = श्रेष्ठ ऋषि पूर्णब्रह्मवेत्ता) ब्रह्मा (चारों वेद कण्ठस्थ किये हुये यज्ञ कराने वाला) आदि, ब्रह्म को पूर्ण रीति से जानने वाले, मुमुक्षुओं वा (देवों सत्य ... उत्तम गुण वाले मनुष्यों), अवतारों* (उतारे हुये महात्माओं अथवा स्वेच्छा और ईश्वरप्रेरणा से लोकोपकारार्थ जन्मे हुये मुक्तों) श्रीजैन तीर्थंकरों (सिद्धशिला पर शिवपुर में विराजमान मुक्त जीवात्माओं), ऐसे ही अन्य सब मतों के प्रवर्त्तकों और उनके उपास्य देवों + दिव्य गुण युक्त शरीरधारियों)। संक्षेपतः जगत् के सर्वदेहधारियों का (निराकार और सर्वव्यापक होने से) एक ना और एक मात्र वैदिक रीति से पूज्य जगदीश्वर।

भर्ग = शुद्ध अध्यात्म-विज्ञान स्वरूप, सकल दोष रहित और तेजदाता अर्थात् भ्रान्तिरहित, मोक्षदाता, परा (ब्रह्म) विद्या शिक्षक, अत्यन्त ज्ञानी और पवित्र अनादि, अनन्त, अजर, अमर, निराकार, निर्विकार (विना विगाड़) जिसमें रूप रस गन्ध स्पर्श और प्राकृत शब्द न हों, छेदन, वेधन, नेत्रादि से दर्शन स्पर्शन आदि जिसके न हों; ह्रस्व दीर्घ हर्ष शोक

*देखो टिप्पणी पृ ४१॥

+ देखो आगे तिरमको

भूख प्यास, शीत उष्ण, काम क्रोध लोभ, मोह आदि जीवों के दुर्गुण नहीं होने और जो उलटा काम कभी नहीं करता।

ईश्वर की आज्ञा पालन का नाम धर्म, जिसके धृति (धैर्य) १. क्षमा (सहना) २. दम (मन का रोकना ३. अस्तेय (चोरी का त्याग) ४. शौच (शुद्धि) ५. इन्द्रियनिग्रह (नेत्र आदि का रोकना) ६. धीः (बुद्धि को दुर्गन्ध और मादक वस्तु न खाकर, ज्ञान से शुद्ध करना) ७. विद्या (वेद आदि का पाठ) ८. सत्य (सच) ९. अक्रोध (रुष्ट न होना) १०. चिह्नों को धारण करने वाला तेजस्वी हो जाता है, अतः ऐसी आज्ञा का दाता ईश्वर तेजदाता है।

देवस्य=सर्व उत्तम गुण युक्त देवों के देव परमेश्वर का अर्थात् अपने निराकार सच्चिदानन्द स्वरूप में आनन्द से क्रीड़ा करते हुये लीलावत् सहज स्वभाव से जगत् के रचनेवाले (१)।

क्रीड़ाओं के आधार सब के जेता (जीतने हारे) स्वयं अजेय किसी से न जीते जानेवाले) किन्तु धार्मिकों के जिताने वाले (२)।

कर्मों के साधन (शरीरों) उपसाधनों (अन्य पदार्थों के दाता (३)

सत् असत् (सच्चे झूठे) व्यवहारों के ज्ञाता सत्य उपदेशक (४)।

सब जगत् के प्रकाशक अर्थात् रचने वाले (५)। मनुष्य मात्र के प्रशंसा के योग्य और निन्दा के अयोग्य (६)।

देवं आनन्दस्वरूप = अत्यन्त आनन्दी अर्थात् दुःख में नित्य मुक्त, अपने उपासकों को आनन्द देने वाले (७)। मदोन्मत्त (मदरा पीने वालों) वा अभिमानियों को तथा चोर डाकू का सीधे बनाने वाले (८)। शोक रहित हर्ष स्वरूप (अत्यन्त हर्ष युक्त) पुण्य आत्माओं को हर्षित और दुःख से दूर रखने वाले (९)। व्यष्टि* वा समष्टि+ रूप अर्थात् सब प्राणियों के अलग अलग वा एक साथ सताने वा अपकार दूर करने एवं अपराधियों के सुधार कर पुनः प्रयोग करने के लिये रात्रि तथा महारात्रि (महाप्रलय) के करने वाले. सर्वसत्तात्मक और सर्व साधक होने से सर्व पदार्थों को प्राप्त किये हुवे. अत्यन्त ज्ञानी, सब मनुष्यों के सब से अधिक जानने, अन्तिम वा सर्वोपरि कामना और प्राप्ति के योग्य परमेश्वर का।

धीमहि = हम ध्यान करें = चिन्तन करें = विचारें = सब ओर से सब शक्तियों को रोक ३७, एक ईश्वर में ही लगावें अर्थात् आँख, नाक, कान, मुँह, हाथ, पाँव आदि बाहरी अङ्गों की क्रियाओं तथा मन चित्त आदि अन्तःकरणों और दशों ज्ञान और कर्म इन्द्रियों को सब विषयों

(३७) ध्यानं निर्विषयं मनः ॥ सांख्य ६ ।२५॥

* एक एक के

\+ एक संग प्राणिमात्र के

(भोग के पदार्थों) से बल पूर्वक रोक । सब सांसारिक संबन्धों (कुटुम्ब आदि) से उस समय अलग ३७ हो (भुला), अपने आप को केवल चेतन, सूक्ष्म, निरवयव अनाश, अणुपरिमाण, आत्मा, निश्चित कर परमपिता परमेश्वर को सब ओर साक्षात् जानते हुये ऊपर बताये परमेश्वर के गुण कर्म स्वभावों को गायत्री मन्त्र के जप से बारंबार गहरे ध्यान से विचार ३८ (स्मरण) कर उनको धारण ३९-४२ करें अर्थात् यथाशक्ति अपने आप को ईश्वर के गुण कर्म स्वभाव वाला बनावें। जिस प्रकार।

१—विद्यार्थी कण्ठ से रटकर शब्दों को कण्ठाग्र कर लेता है।

२—गर्भस्थ बालक (आत्मा) अपनी माता की मानसिक,
४१ वाचिक और कायिक चेष्टाओं (क्रियाओं) को केवल उनही की ओर ध्यान लगाये रहने से सीख लेता है।

(३८) तज्जपस्तदर्थभावनम् । अर्थात् शब्दों का मनसे जप करना और उन्हीं के अर्थों को विचारना ।। योग १ । २८ ।।

(३९) देखो पृ० १२२ प्र० ८ ।।

(४०) देखो पृ० १०९ प्र० १२ ।।

(४१) अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् । युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नम उक्तिं विधेम ।। य० ४० । १६ ।।

(४२) देखो पृ० ५७ प्र० २० ।

(४३ अङ्गादङ्गात्सम्भवसि हृदयादधि जायसे । आत्मा वै पुत्रनामासि स जीव शरदः शतम् ।। निरु० ३ । ४ ।

३—अथवा पापी वा रोगी, महात्मा वा वैद्य के सत्संग मे अपने पाप वा रोग के दूर करने की विधि वा औषधि जान उसके अनुसार चलने वा खाने आदि से पाप वा रोग दूर करता है।

४—किंवा तिलों में बारंबार फूलों का पुट (तह) देने से तिल सुगन्धित हो जाते हैं वा अन्य पदार्थ केवड़े आदि से बसाये जाते हैं।

५—यद्वा आम, नीम आदि वृक्षों के बीजों को मिश्री वेल, हींग, मेंहदी आदि वस्तुओं में बसाने से उनसे उगे हुये वृक्ष सदा वैसे ही सुगन्धित तथा स्वाद वाले बन जाते हैं।

धियः = बुद्धियों = विचार शक्तियां और कर्मों को अर्थात् पांच ज्ञान इन्द्रियों, बुद्धि, और चित्त को, और पांच कर्म इन्द्रियों मन और अहङ्कार तथा पांच शब्दादि विषयों और पांच प्राणों* को।

यः = जो सब का उत्पादक, नित्य शुद्धबुद्ध मुक्त स्वभाव, सर्वज्ञ, सर्व शक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, निराकार, सदा धर्म शिक्षक और सब से श्रेष्ठ = प्रेरक, सब का इष्टदेव परमेश्वर।

नः = हमारी वा हमारे।

प्रचोदयात् = प्रेरित करे = बुराई से लौटा कर भलाई में लगावे

---

* इन सब इन्द्रियों आदि के समूह को लिङ्ग वा सूक्ष्म शरीर कहते हैं॥

अर्थात् हमारे अन्तःकरण (बुद्धि, मन, चित्त, अहङ्कार *) और ज्ञान इन्द्रियों को सदा रज और तम के धर्मों के वेग या प्रभाव से सर्वथा बचा, अविद्या

---

* बुद्धि, चित्त अहङ्कार और मन इनका पार्थक्य व्याख्या एवं टि० पृ० ६३ ६४ तथा निम्नस्थ युक्ति प्रमाणों से सिद्ध है:—

१—बुद्धि [सत्व] सतोगुणी होने से निश्चयात्मिका है। विपरीत इसके मन रजोगुणी होने से अनिश्चयात्मक है। तथा चित्त राजसी होने से [illegible] है। तथैव अहङ्कार राजसी होने से स्वस्वचिन्तक है। [illegible] सिद्ध हैं॥

२—बुद्धि, अहङ्कार और मन की कार्य कारणता भी भेद साधक है।

३—मननात्मकता से बुद्धि करण का वाचक 'मन' शब्द हो सकता है। पर अहङ्कार की प्रकृति (बुद्धि) और विकृति 'मन' दोनों एक नहीं हो सकते हैं। फिर उक्त बुद्धि और मन पृथक्त्व (मनो विकृत सम) ज्ञान ([illegible] बुद्धि) के ऐक्य की कथा हो क्या?

४—पारस्परिक धर्म विरोध भी मन बुद्धि आदि का भेदक है।

५—'शब्द प्रेरणा' वाला बुद्धि (मति=सत्व, में हो कही जाने से भी मन आदि से बुद्धि की भिन्नता सिद्ध है।

बुद्धि सत्ता में प्रमाण: गायत्री मन्त्र॥ यजु० ३२। १४, १५। य० ३४। २॥ प्रश्न० ६। ४। कठ० २। ९॥ क० ३। १०। क० ६। ७, १० सां० १। ६४। ७१। श्वे० ३। १२ आदि॥

मन० प्रमाण:—ऋ० १०। १९१। २। ३। ऋ० १०। १६४। १। २। यजु० ३४ १, ३, ५, ६ सां० २। १७। १८॥

चित्त० प्रमाण:—ऋ० १०। १९१। ३॥ ऋ० १०। १६६। ४॥ ऋ० ५। १८। २। सां० १। ५८॥ अथर्व० ६। ४१—१

अहङ्कार० प्रमाण:—सां० १। ६१, ६३, ७२॥ सां० ३। १६। १८। २०॥

(अनित्य कार्य लोक लोकान्तरों वा जगत् को नित्य और नित्य ईश्वर, जीव और कारण प्रकृति को अनित्य जानना), अस्मिता (बुद्धि और आत्मा को एक समझना, राग (सुख की इच्छा) द्वेष (दुःख से घृणा), और अभिनिवेश) (मरने से डरना (५ क्लेशों) विषय चिन्तन, दुष्ट स्मृतियों, एवं अभिमान से दूर करके, अवैदिक, मिथ्या, कल्पित आदि अगणित दूषणयुक्त नाना भाँति के मतमतान्तरों और उनके वाक्जाल गप्पाष्टकों को सर्वथा अलग करें।

विद्या, विवेक, समदृष्टि (भ्रातृ भाव), विज्ञान, वेद आदि सत्य शास्त्रों के पढ़ने, ईश्वर, जीव, प्रकृति, सम्बन्धी विचार करने, परोपकार, धर्मप्रचार, देशोद्धार तथा शारीरिक, सामाजिक, और आत्मिक उन्नति आदि के उत्तमोत्तम विचारों, में लगावें।

और हमारे विषयों वा प्राणों को तथा कर्मेन्द्रियों के भी एक नम के आघातों से सर्वथा सुरक्षित रख पूर्ण सतोगुणी, बना सर्व दुष्ट दर्शनों, अनिष्ट श्रवणों, रजोगुणी, तमोगुणी स्वादों तथा स्पर्श आदि अन्य विषयों से पृथक् रखें। चोरी अन्याय, स्वार्थ, परअपकार (दूसरे की हानि) राजा, प्रजा, भाई बन्धु से लड़ना, मिथ्या भाषण, हिंसा, छल, कपट, अत्याचार आदि सब दुराचारों से सब भांति निर्दोष करके।

सदा महात्मा सदाचारियों आदि के शुभदर्शनों, वेदशास्त्र, वैदिक उपदेश तथा अपनी अभीष्ट उन्नति के

समाचार सुनने आदि धार्मिक विषयों तथा अहिंसा सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य अपरिग्रह (५ यमों) की रक्षा सन्ध्या आदि पांच यज्ञों के नित्य करने, परोपकार, मित्र व्यवहार सत्य और प्रिय भाषण, न्याय, दया, अच्छा बर्त्ताव (जैसे दीन रक्षा आदि) धर्म पालन और सदाचार (सत्य एवं सनतान वैदिक आचार) में लगावे।

और अपनी आभ्यन्तर शिक्षा के ग्रहण करने में तत्पर करें जिससे लज्जा, शंका, भय वाले कर्मों को नितान्त छोड़ कर सर्वदा उत्साह, आनन्द, निर्भयता वाले कर्मों को करते रहें॥

अथ नमस्कार--मन्त्रः

अब सन्ध्या--प्राप्त ईश्वर से स्तुति पूर्वक प्रतिज्ञा करते हुये ध्यान से पृथक् होने का अर्थात् अन्तिम मन्त्र लिखते हैं।

(४४) गायत्री वा इदं ँ सर्वं भूतं यदिदं किञ्च। वाग्वै गायत्री वाग्वा इद ँ सर्वं भूतम्, गायति च त्रायति च।

(४५) सैषा चतुष्पदा षड्विधा गायत्री तदेतदृचाभ्यनूक्तम्॥ छांदो० य ३।१२।१ ५॥

(४६) ओंकारपूर्विकास्तिस्रो महाव्याहृतयो व्ययाः। त्रिपदा चैव सावित्री विज्ञेयं ब्रह्मणो मुखम्॥ मनु० ॥ ८१॥

भाव यह कि सन्ध्या में एक मात्र उपर्युक्त गायत्री प्रत्येक सन्ध्या करने वाले को जपना चाहिये।

(४७) सहस्रकृत्वस्त्वभ्यस्य बहिरेतत्त्रिकं द्विजः॥ मनु० २। ७९॥

(४८) एतयर्चा विसंयुक्तः काले च क्रियया स्वया। ब्रह्मक्षत्रियविड्योनिर्गर्हणां याति साधुषु॥ मनु० २। ८०॥

इन प्रमाणों से सिद्ध है कि उपर्युक्त गायत्री मन्त्र ही प्राथम

१९—ओ३म् नमः॑ शम्भ॒वाय॑ च मयो-
भ॒वाय॑ च॒ । नम॑ः शङ्क॒राय॑ च मय-
स्क॒राय॑ च॒ । नम॑ः शि॒वाय॑ च शिवत॑-
राय च॒ ॥यजु० १६ । ४१ ॥

पदार्थाः—

शम्भवाय = सुखस्वरूप के लिये अर्थात् अत्यन्तसुखी परमेश्वर के लिये ।

नमः = हम नमस्कार करते हैं अर्थात् उसकी सुख देने वाली आज्ञाओं का चिन्तन करके यथाशक्ति पालन करने का संकल्प करते हैं ।

च = और ।

मयोभवाय च = उत्तम सुखों के दाता के लिये नमस्कार अर्थात् सुख प्राप्ति के लिये परमेश्वर की आज्ञाओं के पालन की प्रतिज्ञा करते हैं ।

शङ्कराय = कल्याणकारी अर्थात् केवल धर्मकार्यों के करने वाले जगदीश्वर को ।

नमः = हम नमस्कार करते हैं अर्थात् प्रतिज्ञा करते हैं कि अवैदिक कर्मों को छोड़ वैदिक कर्म करने का उद्योग करेंगे ।

क्षत्रिय तथा वैश्य के लिये अर्थात् मूर्ख वा शूद्र जो किसी प्रकार से पढ़ाने वा समझाने आदि से न समझ सकें) के अतिरिक्त मनुष्य मात्र के लिये एकली ही है ।

च=और।

मयस्कराय=भक्तहितैषी की अर्थात् अपने भक्तों को धर्म में लगा कर सुख देनेवाले की।

च=नमः=हम वन्दना करें अर्थात् पापों से सर्वथा अलग रह कर सर्वदा सुख में रहें।

शिवाय=अत्यन्त मंगलस्वरूप के लिये अर्थात् जीवों को निष्काम और आनन्द-अनुभवी बनाने वाले, आप्त-काम और आनन्दरूप, सर्वेश्वर के लिए।

नमः=हम नमस्कार करें अर्थात् ब्रह्म उपासना (ध्यान) करके सदा आनन्द में रहें।

च=और।

शिवतराय=सुख तथा आनन्ददाता, नित्य मुक्त, ईश्वर के लिये, अर्थात् धार्मिक मनुष्यों को संसारी सुख और मुक्ति के अधिकारियों को मोक्षानन्द देने वाले, जन्म वा शरीर के बन्धन से (सर्वव्यापक और सर्वज्ञ होने से) सदा मुक्ति (अलग) प्रत्युत अपने साधारण ज्ञान से अल्पज्ञ ब्रह्मा, महादेव, आदि उत्तम गुणवाले योगियों को मुक्त करनेवाले के लिये।

नमः=हम सब भांति मन वाणी और शरीर से प्रणाम करें अर्थात् स्वार्थ रूप पाप से रहित हो कर निष्काम कर्म (धर्म प्रचार) करते हुये योगाभ्यास और अन्तःकरण की शुद्धि से ईश्वर के धर्मों को धारण कर मोक्षानन्द भोगें॥

विस्पष्टार्थः

हम, अत्यन्त सुखी, धर्मात्माओं को संसार का सुख देने वाले, सर्वज्ञ एवं सर्वशक्तिमान् होने से सदा पाप से अलग अत्यन्त धार्मिक सज्जनों (सब शुभ कर्म करने वाले सत्यवादियों) का कल्याण करने वाले, आनन्दमय वा नित्य आनन्दस्वरूप. सर्वदा सर्वथा कामना रहित, निष्काम परोपकारियों को अपने पूर्णज्ञान के प्रकाश से, संसार से छुड़ा मोक्षा-नन्द भुगाने वाले, सच्चिदानन्द, चेतन वा ज्ञान स्वरूप होने से कभी माया, मोह वा अज्ञान में अल्पज्ञों की भांति फंसकर जन्म मरण चक्र में न पड़ने वाले, नाहीं दुःख सुख आदि द्वन्द्वों में बंधने वाले, और न अपने धर्म के विरुद्ध, स्वाभाविक मुक्ति को मायावादियों की माया के हाथ बन्धन से बदलने, नाहीं अपने प्रकाश स्वरूप को माया नाम किञ्चित् तमसे नष्ट करने, और (मानुषी दुर्गुणों से सर्वथा परे होते हुये) कदापि शोक मोह आदि में श्रीराम, कृष्णजी की भांति न फंसने वाले, जिसका ज्ञान प्राप्तकर मनुष्य सदा मंगल करता है, ऐसे जगदीश्वर की नीचे लिखी यजुर्वे-

---

(१) कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छत ँ समाः। एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे॥ यजु० ४०। २॥

२ ईशावास्यमिद ँ सर्वं यत्किञ्चिज्जगत्यां जगत्। तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्॥ यजु० ४०। १॥

३ ज्योतिष्मन्तं केतुमन्तं त्रिचक्रं सुखं रथं सुषदं भूरिवारिम्

वीय आज्ञा के अनुसार निष्काम कर्म से सब संसार सुखों को भोग, वेद, उपनिषदादि शास्त्रों से यथार्थ ब्रह्मविद्या को श्रवण, मनन, और निदिध्यासन वा योगाभ्यास से प्रत्यक्ष करते हुये बन्धन से छूट मोक्षानन्द भोगें। इत्योऽम् ॥

अथ हवनमन्त्राः

१—हवनविधिः ॥

प्रातः काल, सन्ध्या (सूर्योदय) के पश्चात् और सायंकाल सन्ध्या (सूर्यास्त) से पहले, चिमटा, चिमचा वा स्रुवा, आचमनपात्र, प्रोक्षणीपात्र, *हवनकुण्ड, *घृतपात्र, सामग्रीपात्र, समिधायें और एक घृत का दीपक लेकर पूर्वादि दिशाओं में जिधर वायु जाता हो उधर, यदि अधिक स्त्री पुरुष एवं बालक *हों तो सब ओर मुँह करके, खुले स्थान में बैठ, आचमन, अङ्गस्पर्श आदि करके। अनामिका मध्यमा और अंगुष्ठ से स्रुवा पकड़ घृताहुति, और हथेली ऊपर किये हुये अंगुलियों पर रखकर अन्य पदार्थों की आहुति

* चित्रा मघा यस्य योगेऽधिजज्ञे तंवां हुवे अतिरिक्तं पिबध्यै ॥ ऋ० ८। ५८। ३ ॥

देना चाहिये। ज्वाला से बचने को पूर्ण घृताहुति खड़े होकर देवें। बड़े हवन के लिये, सन्ध्या मन्त्रों में 'स्वाहा' और सन्ध्या में लिखे अन्य मन्त्रों के पहले, ओं' और पीछे 'स्वाहा' लगा लेवें॥

२—यज्ञसमिधा॥

पलाश (ढाक), शमी, पीपल, बड़, गूलर, आम, बेल आदि वेदी के अनुसार बड़ी छोटी, सूखी, पवित्र समिधा लेवें॥

२—हवनपदार्थाः

कस्तूरी, केसर, कपूर, अगर, तगर, श्वेतचंदनचूर्ण, इलायची, जायफल, जावित्री, नागरमोथा, बालछड़, उशीर (खस), लौंग, देवदार चूर्ण, इन्द्रजव, तेजपात, दालचीनी, नागकेसर, छार छबीला आदि सुगन्धित। चिरायता, पद्माख लालचन्दन चूर्ण, गिलोय, मुलहठी आदि ओषधि यथा आव-

श्यकता एवं ऋतु

घृत, दूध, फल, कन्द, चावल, गेहूँ, उर्द, मूंग, चना, जौ, तिल आदि पुष्टकारक।

शक्कर, मधु, लड्डू, पेड़ा, हलवा, भात, खीर, मोहनभोग आदि मीठे भोजन।

दाख, छुहारे, किशमिश, मखाना, गोला, पिस्ता, अखरोट, बादाम, चिरौंजी, शीतलचीनी आदि शुष्क मेवा। अमरूद, नासपाती, अङ्गूर, सेब आदि गीली मेवा॥

४—आचमनविधिः ॥

ओं अमृतोपस्तरणमसि-स्वाहा ॥ इससे एक आचमन करें ॥

ओं अमृतापिधानमसि-स्वाहा ॥ इससे दूसरा ॥

ओं सत्यं यशः श्रीर्मयि श्रीः श्रयताम्-स्वाहा ॥ इससे तीसरा ॥

५—अङ्गस्पर्शविधिः ॥

१—ओं वाङ्मआस्येऽस्तु ॥ इसको कहकर मुख छुवें ॥

२—ओं नसोर्मे प्राणोस्तु ॥" दोनों नथने" ॥

३—ओं अक्ष्णोर्मे चक्षुरस्तु ॥ " दोनों आंखें " ॥

४—ओं कर्णयोर्मे श्रोत्रमस्तु ॥ दोनों कान ॥

५—ओं बाह्वोर्मे बलमस्तु ॥ " दोनों भुजायें " ॥

६—ओं ऊर्वोर्मे ओजोस्तु ॥ " दोनों कोखें " ॥

७—ओं अरिष्टानि मेऽङ्गानि तनूस्तन्वा मे सह सन्तु ॥ सब अङ्गों पर जल छिड़कें ॥

६—अग्न्याधानम् ॥

ओम् । भूर्भुवःस्वर्द्यौरिव भूम्ना पृथिवीव वरिम्णा तस्यास्ते पृथिवि देवयजनि पृष्ठेग्निमन्नादमन्नाद्यायादधे ॥ य० ३ । ५ ॥

इस मन्त्र से अग्नि सहित कपूर अथवा जलती अग्नि को वेदी वा हवन कुण्ड में रखें ॥

ओम् । उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि त्व मिष्टापूर्त्ते स सृजेथामयञ्च। अस्मिन् सधस्थे अध्युत्तरस्मिन् विश्वेदेवा यजमानश्च सीदत ॥ यजु० १५ । ५४ ॥

इस मंत्र से वायु आदि से अग्नि प्रज्वलित करें ।

७—समिधाधानम् ॥

अगले तीन मन्त्रों से तीन समिधायें आठ आठ अंगुल का घृत लगा कर अग्नि में धरें ।

ओम् । समिधाग्निन् दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम् । आस्मिन् हव्या जुहोतन, स्वाहा ॥ य० ३ । १ ॥ एक समिधा ॥

ओम् । सुसमिद्धाय शोचिषे घृतन् तीव्रञ् जुहोतन ॥ अग्नये जातवेदसे, स्वाहा ॥ य० ३ । २ ॥ दूसरी ॥

ओम् । तन्त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्धयामसि । बृहच्छोचा यविष्ठ्य, स्वाहा ॥ य० ३ । ३ ॥ तीसरी समिधा

८—घृताहुतिः ॥

नीचे के मन्त्र से पाँच घृताहुति दें और स्रुवा में बचे घृत को जल (प्रोक्षणी) पात्र में "इदन्नमम" कह कर टपकाते जावें ॥

ओम् । अयन्त इध्म आत्मा जातवेदस् तेनेध्यस्ववर्द्धस्व चेद्ध वर्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय, स्वाहा ॥ इदमग्नये जातवेदसे इदन्न मम ॥

९—जलप्रक्षालनम् ॥

अञ्जलि में जल लेकर वेदी वा कुण्ड के आसपास छोड़ें

१—ओम् । अदितेनुमन्यस्व ॥ इससे पूर्व में ॥

२—ओम् । अनुमतेनुमन्यस्व ॥ इससे पश्चिम में ॥

३—ओम् । सरस्वत्यनुमन्यस्व ॥ इससे उत्तर में ॥

४—ओम् । देव सवितः प्रसुव यज्ञम् प्रसुव यज्ञपतिम् भगाय । दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतन्नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचन्नः स्वदतु ॥ य० ११ । ७ ॥ इससे दक्षिण और फिर चारों ओर ॥

१०—आघारावाज्याहुतिः ॥

वेदी वा कुण्ड में अग्नि पर दो घृताहुतियाँ दें ॥

१—ओम् । अग्नये स्वाहा ॥ इदमग्नये—इदन्न मम ॥ इससे दक्षिण में एक ॥

२—ओम् । सोमाय स्वाहा । इदं सो माय इदन्नमम—इससे उत्तर में दूसरी

११—आज्याहुतिः ॥

इन दो मन्त्रों से वेदी के मध्य में दो घृताहुति दें ॥

१—ओम् । प्रजापतये स्वाहा । इदम् प्रजापतये इदन्न मम ॥

२—ओम् । इन्द्राय स्वाहा । इदमिन्द्राय इदन्न मम ॥

१२—प्रातःकाल-हवनमन्त्राः ॥

१—ओम् । सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा ॥

२—ओम् सूर्यो वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा ॥ य० ३ । ९ ॥

३—ओम् । ज्योतिः सूर्यः सूर्यो ज्योतिः स्वाहा ॥

४—ओम् । सजूर्देवेन सवित्रा सजूरुषसेन्द्रवत्या जुषाणः सूर्यो वेतु स्वाहा ॥ य० ३ । १० ॥

१३—सायङ्काल-यज्ञमन्त्राः ॥

१—ओम् । अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा ॥

२—ओम् । अग्निर्वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा ॥ य० ३ । ६ ॥

३—ओम् । अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा ॥

४—ओम् सजूर्देवेन सवित्रा सजूरात्र्येन्द्रवत्या जुषाणो अग्निर्वेतु स्वाहा ॥ य० ३ । १० ॥

१४—प्रातःसायं यज्ञमन्त्राः ॥

१—ओम् । भूरग्नये प्राणाय स्वाहा ॥ इदमग्नये प्राणाय इदन्न मम ॥

२—ओम् । भुवर्वायवेऽपानाय स्वाहा ॥ इदं वायवेऽपानाय इदन्न मम ॥

३—ओम् । स्वरादित्याय व्यानाय स्वाहा ॥ इदमादित्याय व्यानाय इदन्न मम ॥

४—ओम् । भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः स्वाहा॥ इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः इदन्न मम ॥

५—ओम् । आपो ज्योतीरसोऽमृतम् ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम स्वाहा ॥

६—ओम् । याम् मेधाम् देवगणाः पितरश्चोपासते । तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनङ्कुरु, स्वाहा ॥

७—ओम् । भूर्भुवः स्वः । तत् सवितुर्वरेण्यम् भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात, स्वाहा ॥

८—ओम् । विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव । यद्भद्रन् तन् नः आसुव, स्वाहा ॥ य० ३० । ३ ॥

९—ओम् । अग्ने व्रतपते व्रतञ्चरिष्यामि तच्छकेयम् । तन्मे-राध्यतामिदमहमनृतात् सत्यमुपैमि, स्वाहा ॥

१०—ओम् । यदस्य कर्मणोत्यरीरिचं यद्वा न्यूनमिहाकरम् अग्निष्टत् स्विष्टकृद् विद्यात् सर्वं स्विष्टं सुहुतङ्करोतु मे । अग्नये स्विष्टकृते सुहुतहुते सर्व प्रायश्चित्ताहुतीनाङ्कामानां समर्द्धयित्रे सर्वान्नः कामान् समर्धय स्वाहा ॥ इदमग्नये स्विष्टकृते इदन्न मम ॥

पूर्णाहुतिः ॥

११—ओम् । सर्वं वै पूर्णं थं स्वाहा ॥ इसको तीन वार कह तीन आहुति दें ॥

शमित्योम् ॥

शुद्धाशुद्धिपत्र

अशुद्ध	पृ०	पं०	शुद्ध
पव	१३	६	एवं
बीय	१६	१०	वीर्य
ऐश्व य	१६	१४	ऐश्वर्य
शन्द ों	१८	१	शब्दों
काई	२०	१८	कोई
अपवी	२४	१७	अपनी
निश्चित।	२४	१८	निश्चित
पृीतये	३१	१२	पीतये
शंयोनः	३१	१२	शंयोर्नः
अभिस्रवन्तुः	३१	१३	अभिस्रवन्तु
जाभ	३५	३	जीभ
यथा	३६	७	तथा
कएटे	३८	२	कण्ठे
परश्मेवर	३८	१८	परमेश्वर
सपर्पगाच्छुक्रम्	३९	२४	सपर्यागच्छु क्रम्
तुपुना	४१	१	पुनातु।
प्रेत्थ	४५	२३	प्रेत्य
द्रुव्य	४५	२५	द्रव्य
वौर	४५	२५	और
होवनोला	४६	३	होनेवाला
सत्र मावृत्व	४६	२०	सर्वमावृत्य
वशो	५२	९	वशी
पर्व	५२	११	पूर्व
चात्तरिक्ष	५२	१२	चान्तरिक्ष

अशुद्ध	पृष्ठ	पं०	शुद्ध
क्रिसे	५४	१२	क्रिसी
फला	५८	१३	फलों
कहाथी	६४	१५	कहाती
लखते	६५	२४	लिखते
सूर्य	८२	१६	सूर्य्य
आतव	८२	१६	आर्तव
जाते	८४	५	जाते हैं
ाने	८५	१३	अपने
ई	८५	१४	ईश्वर
वर	८७	२५	कर
पदाथ	९१	१४	पदार्थ
तिज्ञ	९२	१५	नीतिज्ञ
द्रुष्टि	९३	२१	द्रोष्टि
रक्षिता अन्न	९६	१२	रक्षितान्न
यमू:	९६	१६	यम्
जम्भो	९६	२१	जम्भे
सामः	९८	२२	सामः
देके	९८	२३	देके
स्मान	९९	१७	स्मान्
मूर्खत	१००	२०	मूर्खता
मन	१०१	३	नम
भगवाना	१०१	१५	भगवानों
दवा	१०५	१३	देवों
अन्त	१०६	३	

अशुद्ध	पृष्ठ	पं०	शुद्ध
जो ज्योति: स्वयं	१०६	८	ज्योति:= जा स्वयं
विधिध	११२	२०	विविध
स्थुपश	११३	१५	स्थूपश्
चक्षः	११६	३	चक्षुः
यथा	१२४	३	तथा
पुरस्ताद्दृष्च	१२६	५	पुरस्ताद्दृष्च
शाक	१३६	७	शोक
सतागुणा	१४२	६	सतोगुणी
मनापलब्ध	१४२	१३	मनोपलब्ध
स्मृतियों	१४३	६	स्मृतिय
ग्रहण	१४४	७	ग्रहण